न्ना

क

नर्दृष्टि

वीरेन्द्र कुमार बरनवाल

जिन्ना : एक पुनर्दृष्टि

जिन्ना : एक पुनर्दृष्टि

वीरेन्द्र कुमार बरनवाल

उन्हें

जो टूटे-छूटे

मरे और बिखरे

विभाजन की

विभीषिका

में

तथा

स्वतन्त्रता-सेनानी, सेवा-व्रती

स्व. मुंशी दौलत लाल

की स्मृति में

विषय-सूची

खंड : चार

जिन्ना : एक पुनर्दृष्टि

इतिहास मात्र घटनाओं का संकुल और महत्त्वाकांक्षियों की नियति के उतार-चढ़ाव का दस्तावेज़ ही नहीं है। उसके विराट मंच पर उभरे काल-प्रेरित अभिनेताओं के मनोजगत की उथल-पुथल से संरचित व्यक्तियों के समझौते-टकराव और घात-प्रतिघात उसकी धारा को प्रभावित करने में निर्णयात्मक भूमिका निभाते हैं। कुछ इसी विश्वास के फलस्वरूप जिन्ना के जीवन पर विहंगम दृष्टि डालते हुए उन्हें उनके महत्त्वपूर्ण समकालीनों के साथ-साथ अलग-अलग समझने-परखने की कोशिश इस किताब में मिलेगी।

भूमिका

"जिन्ना सच्चे तत्त्वों से बने हैं। साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह से मुक्त वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के सर्वश्रेष्ठ राजदूत हैं।"

–गोपाल कृष्ण गोखले

"जिन्ना मुझे उस शख़्स की याद दिलाते हैं, जो अपने माँ-बाप–दोनों को क़त्ल कर अदालत से इस बिना पर माफ़ी चाहता है, कि वह यतीम है।"

–जवाहरलाल नेहरू

इतिहास सामान्यतः ग्लेशियर की अदृश्य मन्थर गति से रेंगता हुआ चलता है, पर कभी-कभी उसमें प्रपात का आवेश-भरा वेग भी आ जाता है। कुछ ऐसा ही अप्रतिम वेग भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की धारा में सन् 1937 से लेकर सन् 1947 के दौरान आया, जिसने विश्व के लगभग पाँचवें हिस्से की नियति को बड़ी गहराई से प्रभावित किया। महात्मा गांधी के साथ ही इस कालखंड के नियति-पुरुष सिद्ध हुए क़ायदे आज़म मुहम्मद अली जिन्ना। भारत-विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण में अग्रणी भूमिका के कारण जहाँ जिन्ना की छवि सामान्य भारतीय जन-मानस में एक दुर्दान्त खलनायक की है, वहीं पाकिस्तान में उन्हें न केवल 'राष्ट्रपिता' का दर्जा हासिल है, बल्कि वहाँ उन्हें देवत्व-सा प्रदान कर लगभग पूजा जाता है। जिन्ना का राजनीतिक व्यक्तित्व इन्हीं दो अतियों के बीच झूलता रहा है। उनके सम्बन्ध में गोपाल कृष्ण गोखले और पं. जवाहरलाल नेहरू के उपर्युक्त कथन उनके राजनीतिक जीवन के दो ध्रुवान्तों को रेखांकित करते हैं।

साधारण भारतीयों के मन में जिन्ना की छवि एक निहायत नीरस, अन्तर्मुखी, तार्किक, अधार्मिक, भावना-शून्य, मनहूस, हिसाबी, सिर से पैर तक पश्चिमी सभ्यता में रँगे, चोटी के वकील के साथ एक अपराजेय राजनीतिक सौदेबाज़ की रही है। जिन्ना के व्यक्तित्व की इन विशेषताओं को झुठलाना जहाँ निहायत दुश्वार है, वहीं मात्र इन्हीं विशेषताओं में उन्हें सीमित करना वस्तुतः सच्चाई से मुँह मोड़ना होगा। जिन्ना के जीवन और व्यक्तित्व के कुछ ऐसे पहलू हैं, जो बहुत कम उजागर हो पाए हैं। फलस्वरूप अकसर उनका एकांगी मूल्यांकन ही हो पाया है।

जिन्ना के जटिल व्यक्तित्व और जीवन को थोड़ा बेहतर समझने के प्रयास की कुंजी

उनकी राजनीतिक गतिविधियों और भाषणों के अलावा उनके जीवन और व्यक्तित्व के उन अल्पज्ञात पहलुओं में भी ढूँढ़नी होगी, जो प्रत्यक्षतः प्रायः बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं लगते, पर जाने-अनजाने व्यक्तित्व और जीवन को ढालने में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। वह शायद अपने समय के अकेले ऐसे राजनेता थे, जो उस समय देश की तीनों अहम राजनीतिक पार्टियों कांग्रेस, होमरूल लीग और मुस्लिम लीग में न केवल वरिष्ठ स्थान के हक़दार माने जाते थे, बल्कि उनकी नीति और दिशा-निर्धारण में भी अग्रणी भूमिका अदा करते थे। लोकमान्य तिलक के बचाव में अदालत में उनकी बहस, असेम्बली में स्थानीय निकायों के स्वशासन में भारतीयों की पर्याप्त भागीदारी, सेना के भारतीयकरण, वक्फ़ बिल और रौलेट ऐक्ट के विरोध तथा सरदार भगत सिंह के केस के निपटारे के लिए वाइसराय द्वारा विशेष क़ानून के बिल को लेकर दिए गए उनके निर्भीक, तर्कसंगत और ओजस्वी भाषण आज भी भारतीय उपमहाद्वीप के संसदीय इतिहास में बेमिसाल हैं। पाकिस्तान के निर्माण में उनकी भूमिका ने दुर्भाग्यवश अविभाजित भारत की संसदीय परम्परा के विकास में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान पर विस्मृति की धूल डाल दी है।

जिन्ना के बारे में लिखना दरअसल उनके दो महान समकालीनों और प्रतिद्वन्द्वियों, गांधी और नेहरू, पर लिखने से कई गुना बड़ी चुनौती है। जहाँ गांधी और नेहरू का अपना स्वयं का लेखन अत्यन्त विपुल और व्यापक है, वहीं उनके स्वयं के ऊपर समय-समय पर देश-विदेश में प्रारम्भ से आज तक लगातार लिखा जा रहा है। उनकी अपनी आत्मकथाएँ और दूसरे समकालीन दिग्गजों की आत्मकथाओं, जीवनियों, संस्मरणों और अन्य प्रकार के लेखन में उनका ज़िक्र और प्रसंग उन पर लिखन और उनके बारे में समझ विकसित करने में काफ़ी सहायक सिद्ध होते हैं। इसके बरअक्स जिन्ना पर लिखना और उनके सम्बन्ध में एक समग्र समझ विकसित करना काफ़ी कठिन और जोखिम भरा काम है। इसका मुख्य कारण है कि जिन्ना ने न तो आत्मकथा और संस्मरण लिखे हैं और न ही नेहरू और गांधी की तरह समय-समय पर स्वयं अपने लेखन द्वारा अपनी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सोच को अभिव्यक्त करने की कोशिश की। जो कुछ भी उनका और उनके बारे में उपलब्ध है, वह है समय-समय पर केन्द्रीय विधायिका में दिए गए उनके भाषण, राजनीतिक वक्तव्य, कभी-कभी पत्र-पत्रिकाओं में उनके इक्के-दुक्के लेख और अपने समकालीनों के साथ राजनीतिक विषयों पर पत्र-व्यवहार। उनका अपना व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार अत्यन्त दुःखद रूप से नितान्त सीमित है। उनके बारे में लिखे उनके समकालीनों के संस्मरणों और उनकी आत्मकथाओं और जीवनियों में उनके सन्दर्भ के आधार पर ही उन्हें समझने के प्रयास होते रहे हैं। यहाँ भी एक तथ्य अत्यन्त विचलनकारी है। उनके द्वारा डॉ. इक़बाल को लिखे गए आठ पत्र अब दुर्भाग्यवश उपलब्ध नहीं हैं। एक कवि के काग़ज़ों की अराजकता में खो गए। दुर्भाग्यवश वह स्वयं भी उनकी प्रतिलिपियाँ नहीं रख पाए थे। पाकिस्तान में उन पर जो भी लेखन हुआ है, वस्तुतः वह सन्त-चरित सा ही है। उनके जीवन, व्यक्तित्व, कार्यों और उपलब्धियों को वस्तुनिष्ठ तथा आलोचनात्मक दृष्टि से

देखने के प्रयास का उनमें त्रासद अभाव है। सौभाग्य से गहरे आदर, श्रद्धा और भक्ति के बावजूद गांधी और नेहरू के बारे में भारत में ऐसा नहीं हुआ। यहाँ उन्हें वस्तुनिष्ठता के साथ आलोचनात्मक दृष्टि से देखने के कई ईमानदार प्रयास हुए हैं। और अब तो उन पर बदले वातावरण में काफ़ी बेरहमी से टीकाएँ की जा रही हैं। उन पर पड़ा लगभग आधी सदी का श्रद्धा का आवरण अब धीरे-धीरे छिन्न-भिन्न होता जा रहा है। उनके बारे में देश-विदेश में किसी भी अपमानजनक टीका-टिप्पणी से यहाँ अब कोई विचलित नहीं होता। इसे एक हद तक शुभ लक्षण भी माना जा सकता है। इससे निश्चय ही उन्हें समझने की एक बेहतर, स्वस्थ और निर्वैयक्तिक दृष्टि विकसित होने में मदद मिलेगी। कोई कितना भी महान हो, समय और इतिहास के पास उससे न्याय करने के अपने ढंग हैं। यहाँ एक बात निहायत दिलचस्प है। अकबर एस. अहमद ने सन् 1997 में प्रकाशित जिन्ना पर अपनी पुस्तक में यह स्वीकार किया है कि उनके (जिन्ना के) ऊपर कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उत्कृष्ट कोटि का लेखन भारत में हुआ है। एच.एम. सीरवाई और राजमोहन गांधी का जिन्ना पर लेखन इसका प्रमाण है।

जिन्ना हमारे देश के उस लम्बे और शानदार स्वतन्त्रता-संग्राम के महानायकों में से एक हैं, जिसके कई व्यापक महाकाव्यात्मक आयाम हैं। भारतीय उपमहाद्वीप की जातीय स्मृति की जटिल रचनात्मकता को युगान्तर तक सँजोए यहाँ के दोनों महाकाव्यों, रामायण और महाभारत, के चरित्रों और घटनाओं की छाया और आलोक में इतिहास के निर्णायक संघर्ष, घात-प्रतिघात तथा सभ्यता के संकट-संक्रमण की व्याख्या और समझ की कोशिश भारतीय मनीषा लगातार करती रही है। सन् 1857 से सन् 1947 तक चले हमारे नब्बे वर्ष के स्वतन्त्रता-संग्राम के समतुल्य किसी और देश का स्वतन्त्रता-संग्राम नहीं है। इतनी लम्बी कालावधि और इतने विशाल भूखंड में इसकी व्याप्ति ही इसकी अद्वितीयता का एकमात्र कारण नहीं है। इसका असली अनूठापन यहाँ की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और भाषायी अस्मिताओं और हितों के परस्पर टकराव और उनमें सामंजस्य के प्रयासों और उसके लिए ईमानदार-उत्कृष्ट नेतृत्व विकसित करने की उसकी क्षमता में है। इतने जटिल बुनावटवाले इस व्यापक और लम्बे संघर्ष के दौरान कम-से-कम डेढ़ दर्जन ऐसे महान और तेजस्वी व्यक्तित्व प्रकाश में आए जो अपने समकालीन विश्व के श्रेष्ठतम नेतृत्व से तुलनीय हैं। उनमें तिलक, गांधी, जिन्ना, नेहरू, भगत सिंह, सुभाष, पटेल और आज़ाद ऐसे दीप्त व्यक्तित्व हैं, जो अपने समय के दूसरे देशों के कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्वों की आभा फीकी कर देने की क्षमता रखते हैं। ऐसे उदात्त तथा विविध-प्रकृति चरित्रों और घटनाओं का वृहत् संकुल हमें रामायण से अधिक महाभारत में मिलता है। क़ायदे आज़म एकेडमी, कराची के संस्थापक, निदेशक प्रो. शरीफ़ अल मुजाहिद ने जिन्ना को अठारह सौ सत्तावन से उन्नीस सौ सैंतालीस तक की राजनीतिक-सामाजिक गतिविधियों और स्वतन्त्रता-संग्राम के केन्द्र में रखकर लिखी गई अकबर एस. अहमद की चर्चित पुस्तक* की तुलना अकारण ही महाभारत से नहीं की

* जिन्ना, पाकिस्तान एंड मुस्लिम आईडेंटिटी—दि सर्च फ़ॉर सलादीन।

है। स्वतन्त्रता-संग्राम और पाकिस्तान-आन्दोलन के महाकाव्यात्मक आयाम और उसमें जिन्ना के धीरोदात्त नायकत्व को रेखांकित करने के लिए वह होमर के 'इलियड', वर्जिल के 'एनिड' और फिरदौसी के 'शाहनामा' से भी इस पुस्तक की तुलना कर सकते थे। पर अतीत को वर्तमान और वर्तमान को अतीत में प्रतिबिम्बित करने की महाभारत जैसी अपार सम्भावना इन दूसरे विश्वविख्यात महाकाव्यों में नहीं है। रामायण के साथ महाभारत धर्म, जाति, नस्ल और भौगोलिक सीमाओं को नकारते हुए पूरे भारतीय महाद्वीप की जातीय स्मृति का अविभाज्य अंग सिद्ध होता है।

महाभारत की कथा और उसके पात्रों को हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता-संग्राम की घटनाओं और उसे यति-गति देनेवाले नेता-नायकों से जोड़कर भारतीय अंग्रेज़ी लेखक और कथाकार शशि थरूर ने एक वहत् किन्तु दिलचस्प उपन्यास 'दि ग्रेट इंडियन नावेल' लिखा है। इसमें हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता-संग्राम की महाकाव्यात्मकता, उसकी विसंगतियों और अन्तर्विरोधों तथा उसके महत्त्वपूर्ण चरित्रों को हल्के व्यंग्य के पुट के बावजूद गहरी अन्तर्दृष्टि के साथ चित्रित किया गया है। यह हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता-संग्राम की महाभारत के साँचे में अद्भुत पुनर्रचना है। इसमें जिन्ना कर्ण के रूप में प्रस्तुत हैं। अनगिनत विसंगतियों के बावजूद निश्चय ही जिन्ना महाभारत के महान चरित्र कर्ण की याद दिलाते हैं। आज़ादी की लड़ाई के अन्तिम दस वर्षो में देश-विभाजन के आन्दोलन को धारदार और आक्रामक नेतृत्व प्रदान करने के कारण जिन्ना की छवि साधारण हिन्दू-मन में एक खलनायक की ही रही है। राम और कृष्ण के प्रतिद्वन्द्वी-शत्रु रावण और कंस की तरह उन्हें गांधी और नेहरू के दुष्ट प्रतिपक्ष के रूप में देखा जाता रहा है। पर जैसे-जैसे समय बीता, दृष्टि और समझ में धीरे-धीरे वस्तुनिष्ठता और परिपक्वता भी एक सीमा तक बढ़ती गई। कुछ नए दबे हुए तथ्य और सत्य भी प्रकाश में आने लगे। मौलाना आज़ाद की पुस्तक 'भारत ने आज़ादी जीती' (इंडिया विंस फ्रीडम), डॉ. राम मनोहर लोहिया की पुस्तक 'भारत-विभाजन के गुनहगार' (गिल्टीमेन ऑफ़ इंडिया'ज़ पार्टीशन), जिन्ना के अन्तिम दिनों में चिकित्सक कर्नल इलाहीबख़्श की पुस्तक 'क़ायदे आज़म अपने आख़िरी दिनों में' ('क़ायदे आज़म ड्यूरिंग हिज़ लास्ट डेज़'), श्री प्रकाशजी की पुस्तक 'पाकिस्तान : जन्म और प्रारम्भिक दिन' (पाकिस्तान : बर्थ एंड अर्ली डेज़), एच.एम. सीरवाई की पुस्तक 'भारत-विभाजन : किंवदन्तियाँ और सच्चाई' (पार्टीशन ऑफ़ इंडिया—लीजेंड एंड रियलिटी), दुर्गादास की पुस्तक 'भारत : कर्ज़न से नेहरू तक' (इंडिया : फ्रॉम कर्ज़न टू नेहरू), मोहम्मद करीम छागला की पुस्तक 'दिसम्बर में गुलाब' (रोजेज़ इन दिसेम्बर) और राजमोहन गांधी की पुस्तक 'मुस्लिम मन की समझ' (अंडरस्टैंडिंग द मुस्लिम माइंड) कुछ ऐसी कृतियाँ थीं, जिनसे जिन्ना के बारे में सोच बदलने में महत्त्वपूर्ण मदद मिली। धीरे-धीरे यह बात साफ़ होने लगी कि विभाजन के गुनहगार और उसकी विभीषिका के ज़िम्मेदार मात्र जिन्ना ही नहीं थे। जिन्हें सबसे 'अनघ' समझा जाता रहा है, उसके पीछे थोड़ा-बहुत 'अघ' उनका भी रहा है। यह महाभारत की जटिल कथा और उसके पात्रों की, भारतीय

स्वतन्त्रता-संग्राम की घटनाओं और उससे जुड़े महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्वों के विविध प्रसंगों की गहरी रचनात्मक समझ ही थी, जिससे रावण और कंस की श्रेणी से निकालकर जिन्ना को कर्ण जैसे महानायक के चरित्र के प्रकाश में देखने की कोशिश सम्भव हो सकी है। महाभारत के पात्रों के बहुआयामी अन्तर्सम्बन्ध इतिहास के 'क्वचित् प्रकाशित क्वचिदप्रकाशित' मानवीय अन्तर्सम्बन्ध की सहानुभूतिपूर्ण समझ विकसित करने में लगातार सहायक सिद्ध होते रहे हैं। इसी के फलस्वरूप जिन्ना की प्रेयसी-पत्नी रत्ती जिन्ना और कानजी द्वारका दास के बीच निष्कलुष मैत्री सम्बन्ध की तुलना कृष्ण और द्रौपदी के बीच गहन सख्य-भाव से करने का लोभ-संवरण सम्भव नहीं हो सका है। महाभारतकार ने अपने पात्रों को, चाहे वह कितने ही उदात्त या निकृष्ट क्यों न हों, कहीं भी गहरे सफ़ेद या गहरे काले रंग में चित्रित करने के प्रयास नहीं किए हैं। दोनों के बीच का रंग मनुष्य की प्रकृति के अन्तर्वाह्य के विविध पक्षों के चित्रण के लिए उन्हें सर्वत्र उपयोगी और निरापद प्रतीत होता लगता है। आधुनिक इतिहास के अनेक चरित्र हमसे महाभारतकार की दृष्टि की ही माँग करते दिखते हैं।

जिन्ना के बारे में सोचना और लिखना आधी सदी के अन्तराल के बावजूद अभी भी अन्दर से हरे किसी गहरे घाव की पपड़ी बेरहमी से उधेड़ देने जैसी गहरी लोमहर्षक अनुभूति जगाता है। अस्तंगत होती उन्नीसवीं सदी के द्वार पर परिवर्तन-विकल बीसवीं सदी की दस्तक के बीच जिन्ना की राजनीतिक आँखें खुली थीं। पलकों पर उदात्त राष्ट्रीय सपनों के साथ उन्होंने देश के सार्वजनिक जीवन में क़दम रखा था। लगभग चार दशक बाद उनका एक साम्प्रदायिक नेता में करुण अवसान और महज़ अपने बलबूते पर अपने नए लक्ष्य पाकिस्तान को पा लेने के बाद उनमें जगा गहरा अपराधबोध* उन्हें हमारी गहरी संवेदना और सहानुभूति का हक़दार बनाता है। उनमें यूनानी ट्रेजेडी के किसी भी संवेदनशील महानायक की वे सभी विशेषताएँ मिलती हैं, जिनकी रचनात्मक प्रस्तुति उन्हें आधुनिक विश्व-मंच का एक अत्यन्त अविस्मरणीय चरित्र सिद्ध कर सकती है।

बचपन में घर पर आनेवाले लाहौर से विभाजन के दौरान विस्थापित स्नेही सिख व्यापारियों के मुख से वहाँ हुए अत्यन्त भयंकर साम्प्रदायिक दंगों की दारुण व्यथा-कथा सुनी थी। इसके लिए देश के मनहूस विभाजन और उसके लिए ज़िम्मेदार जिन्ना नामक

---

* जिन्ना के अन्तिम दिनों के चिकित्सक सेना के डॉक्टर कर्नल इलाहीबख़्श ने सन् 1949 में प्रकाशित अपनी संस्मरणात्मक पुस्तक 'क़ायदे आज़म अपने आख़िरी दिनों में' (क़ायदे आज़म ड्युरिंग हिज़ लास्ट डेज़') में लिखा था कि जिन्ना ने गहरी उदासी के साथ उनसे कहा था, "डॉक्टर, पाकिस्तान मेरी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी भूल है।" ("डॉक्टर, पाकिस्तान इज़ दि ग्रेटेस्ट ब्लंडर ऑफ़ माई लाइफ़")। आगे चलकर पाकिस्तान की विचारधारा के सुरक्षा अधिनियम (डिफ़ेंस ऑफ़ आइडिया ऑफ़ पाकिस्तान ऐक्ट) बनने के बाद क़ायदे आज़म अकादमी, कराची द्वारा 1978 में पुनर्प्रकाशित इसके दूसरे संस्करण में से यह अंश निकाल दिया गया था। जिन्ना के उक्त कथन की पुष्टि 26 नवम्बर, 1982 के पेशावर से प्रकाशित 'फ्रंटियर पोस्ट' में अपने एक लेख में सरहदी सूबे के पूर्व शिक्षामन्त्री मोहम्मद याहिया जान ने भी की है।

एक मुसलमान को लोग लगातार कोसते थे। गांधी और नेहरू के प्रति भी श्रद्धा और आदर के बावजूद कई लोग अक्सर कटु हो जाते थे। जिन्ना का नाम पहली बार सुना था। पर गांधी और नेहरू के नाम सुभाष और जयप्रकाश के नामों के साथ घर में अक्सर सुनाई पड़ते थे। परिवार के प्रबुद्ध पुरुष सदस्यों के अलावा हमारी माँ, नानी और दादी भी कभी-कभी उनके नाम लेती थीं। माँ गायत्री देवी ने कई छोटी-बड़ी कथरियाँ (बंगाली जिन्हें कंथा कहते हैं) बना रखी थीं, जिन पर उन्होंने तिरंगा झंडा, गांधी, नेहरू और भारतमाता के चित्रों की कढ़ाई रंगीन धागे से कर रखी थी। उन पर जयहिन्द, वन्दे मातरम, भारत माता की जय और गांधीजी की जय जैसे शब्द भी कढ़े थे। ज्ञातव्य है, कथरी, जिसे सुजनी भी कहते थे, दरी की जगह चारपाई पर बिछाई जाती थी। हाँ, माँ ने दो पंक्तियों की एक कविता भी एक बड़ी कथरी पर काढ़ रखी थी—

हम ग़रीबों के गले का हार वन्दे मातरम
छीन सकती है नहीं सरकार वन्दे मारतम।

माँ बताती थीं, जैसे 'र' से राम और रावण, 'क' से कृष्ण और कंस, उसी तरह 'ग' से गांधी और गवर्नमेंट अच्छाई-बुराई के पक्ष और प्रतिपक्ष थे। गवर्नमेंट से माँ की मुराद अंग्रेज़ सरकार से थी। पिता दयारामजी 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन में जेल जाने और वहाँ के बारे में लोगों से चर्चाएँ करते रहते थे। अतः पाँच-छः वर्ष की आयु से ही आज़ादी की लड़ाई के सम्बन्ध में चर्चाएँ और जानकारियाँ कानों में पड़ती रहती थीं, जिनके केन्द्र में गांधी, नेहरू और सुभाष होते थे। बाद में उनमें जयप्रकाश नारायण, डॉ. राम मनोहर लोहिया और आचार्य नरेन्द्र देव के भी नाम जुड़ गए थे। समाजवादियों ने जब कांग्रेस छोड़ी तो वह भी उससे अलग होकर समाजवादी दल के सक्रिय सदस्य बन गए थे। घर पर पिता के एक अध्यापक और मित्र मुंशी दौलत लाल भी रहते थे। उन्होंने विवाह नहीं किया था। उनका सम्पूर्ण जीवन ग़रीबों और मज़लूमों की सेवा के लिए समर्पित था। वह आजीवन पूर्णतः अपरिग्रही रहे। घर पर एक वृद्धा माँ थीं। वह भी काफ़ी समय पहले गुज़र गई थीं। अतः उनका कोई परिवार नहीं था। भारत-छोड़ो आन्दोलन में अपनी सक्रिय भागीदारी और बाद में समाजवादी दल के एक कर्मठ नेता और निःस्वार्थ जनसेवक के रूप में उनकी हमारे क़स्बे फूलपुर और ज़िले आजमगढ़ में भारी प्रतिष्ठा थी। पूर्वी उत्तर प्रदेश के स्वतन्त्रता-सेनानियों में उन्हें अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। वह लगभग चालीस वर्षों तक टाउन एरिया कमेटी फूलपुर के चेयरमैन और सन् 1962 से सन् 1967 तक उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य रहे। लगभग एक दशक पहले आगरा के मनोरोग चिकित्सालय में उनका करुण अन्त हुआ। आज़ादी की लड़ाई के बारे में वह भी अक्सर ढेर सारी जानकारियाँ देते रहते थे। इस पृष्ठभूमि में जिन्ना के साथ गांधी और नेहरू के लिए भी कटु वचन सिख व्यापारियों से सुनकर बालमन उन दोनों के प्रति श्रद्धा और आदरभाव के साथ उस कटुता की संगति नहीं बैठा पाता था। नौ-दस साल की उम्र में मैं साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने लगा था। घर पर गांधीजी की जीवनी थी। उसे ध्यानपूर्वक पढ़ गया। पिताजी ने कुछ बहुत

अच्छी पुस्तकें इकट्ठी कर रखी थीं। उनमें लूई फिशर की एक पुस्तक 'ए ग्रेट चैलेंज' के हिन्दी अनुवाद 'एक महान चुनौती' और रजनी पाम दत्त द्वारा लिखी साम्यवाद पर एक पुस्तक के हिन्दी अनुवाद भी थे। 'एक महान चुनौती' में गांधी, नेहरू, पटेल, आज़ाद, जिन्ना, ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ाँ और अम्बेडकर पर बड़े दिलचस्प ढंग से लिखा गया था। जिन्ना के सम्बन्ध में पहली झलक इसी पुस्तक में मिली थी। रजनी पाम दत्त की पुस्तक ऊपर से गुजर गई थी।

मेरा ननिहाल कोइरीपुर ज़िला सुल्तानपुर में था। नाना सत्यदेव गुप्त ने स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा प्रारम्भ हरिद्वार के निकट स्थित गुरुकुल में अध्यापन किया था। उन्हें गोरखपुर के नार्मल स्कूल में मुंशी प्रेमचन्द ने पढ़ाया था। उन्हीं की संस्तुति पर स्वामी श्रद्धानन्द ने उन्हें (नाना को) गुरुकुल में अध्यापन के लिए चुना था। कुछ समय बाद लगातार बीमार रहने के कारण वह घर लौट आए थे और कपड़े, सीमेन्ट और नमक का थोक व्यवसाय करने लगे थे। स्वतन्त्रता-संग्राम से उनकी गहरी सहानुभूति थी। मोतीलाल नेहरू, मालवीयजी और तेज बहादुर सप्रू से वह मिल चुके थे। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि अरविन्द और रमण महर्षि के प्रति उनका अगाध श्रद्धा-भाव था। वह प्रायः खादी पहनते थे और सत्साहित्य पढ़ते थे। स्वतन्त्रता-संग्राम और इसके नायकों तथा स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ और महर्षि अरविन्द के बारे में गर्मी की चाँदनी रात में वह ढेर सारी बातें बताते थे। उन्होंने ही सन् 1952 में एक रात सोते समय महर्षि अरविन्द की इस भविष्यवाणी का ज़िक्र किया था कि अस्तित्व में आने के 25 वर्ष के अन्दर पाकिस्तान टूट जाएगा। उनके पारिवारिक बैठके में 'आज', 'संसार', 'सन्मार्ग', 'विश्वामित्र', 'अभ्युदय', 'सरस्वती', 'माधुरी', 'मर्यादा', 'हंस' और 'चाँद' जैसी पुरानी पत्र-पत्रिकाओं के कई विशेषांक रखे रहते थे। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के अवसर पर छपे पत्रिकाओं के पुराने विशेषांक भी वहाँ थे। दशहरे और गर्मी की छुट्टियों में धीरे-धीरे मैं लगभग वे सभी विशेषांक आठवीं पास करने से पहले पढ़ चुका था। इससे स्वतन्त्रता-संग्राम, उसके नायकों और उससे जुड़ी महत्त्वपूर्ण धटनाओं की समझ धीरे-धीरे विकसित होने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। पर जिन्ना के सम्बन्ध में उनसे कोई ख़ास जानकारी नहीं मिल सकी थी। छोटे क़स्बे का बौद्धिक संसाधन अत्यन्त सीमित होता है। आज़ादी की लड़ाई के दौरान प्रायः हर छोटे क़स्बे में किसी-न-किसी रूप में पुस्तकालय चल रहे थे, जिनमें हिन्दी और उर्दू में किताबें होती थीं। 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन के दौरान उनसे जुड़े लोग या तो जेल चले गए थे या भूमिगत हो गए थे। धीरे-धीरे वे पुस्तकालय बिखर गए। कुछ चतुर लोग चोरी-छिपे पुस्तकें घर उठा ले गए थे। आज़ादी के बाद हिन्दी-क्षेत्र के क़स्बों में फिर पुस्तकालय-आन्दोलन पनप नहीं सका।

कामचलाऊ अंग्रेज़ी भाषा की समझ ग्यारहवीं कक्षा में विकसित हो चली थी। पड़ोस में एक किराने की दुकान थी। सौदा बाँधने और लपेटने के लिए वहाँ अंग्रेज़ी के पुराने अख़बार और पत्रिकाएँ थोक में आती थीं। दुकान के मालिक सीतारामजी पिता

के मित्र थे। स्वतन्त्रता-संग्राम से लगाव के कारण 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन के दौरान गिरफ़्तारी से बचने के लिए वह भूमिगत रह चुके थे। पिता के साथ उन्होंने गांधी, सुभाष, नेहरू, पुरुषोत्तम दास टंडन, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण और डॉ. राम मनोहर लोहिया को कई बार बहुत निकट से देखा था। वह धीरे-धीरे मेरी अभिरुचियों से परिचित हो गए थे। वह स्वयं अंग्रेज़ी नहीं जानते थे। पर उन पुराने अख़बारों में आज़ादी की लड़ाई से जुड़े नेताओं के चित्र देखकर वह समझ जाते थे कि उनमें उनसे सम्बन्धित कोई सामग्री है। उन्हें वह अलग कर मुझे दे देते थे। मैं भी जब पुराने अख़बारों के बंडल वहाँ आते थे, उन पर निगाह रखता था। उनमें से अपनी रुचि की चीज़ें छाँट लेता था। उन्हें डिक्शनरी की सहायता से पढ़ता था। उनमें कभी-कभी भारत-विभाजन और उससे जुड़े व्यक्तियों के बारे में लेख भी होते थे। विभाजन और उसकी माँग करनेवाले मुस्लिम लीग के नेताओं के बारे में, जिनमें जिन्ना का प्रमुख स्थान होता था, मेरी प्राथमिक जानकारी के स्रोत यही पुराने अख़बार थे। बाद में एम.ए. करने के पश्चात् जब अंग्रेज़ी भाषा की थोड़ी बेहतर समझ विकसित हुई तो स्वतन्त्रता-संग्राम, देश-विभाजन और उससे जुड़े व्यक्तित्वों के सम्बन्ध में अंग्रेज़ी में पढ़ने का मौक़ा मिला। विभाजन को लेकर लिखे गए यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच', रामानन्द सागर की पुस्तक 'और इंसान मर गया', अब्दुल्ला हुसैन के उपन्यास 'उदास नस्लें', मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' तथा खुशवन्त सिंह के उपन्यास 'ट्रेन टू पाकिस्तान' ने मानव इतिहास की इस अभूतपूर्व भीषण त्रासदी के गहरे मानवीय पक्ष को समझने की अन्तर्दृष्टि और संवेदना विकसित करने में भारी मदद की। विभाजन को लेकर लिखी गई मंटो की छोटी-छोटी कहानियों, ख़ासकर 'टोबा टेकसिंह' ने किशोर मन को कई-कई दिनों तक विकल करके रखा था। पाकिस्तान के कथाकारों की विभाजन को लेकर उर्दू और पंजाबी कहानियों के हिन्दी अनुवादों को भी पत्रिकाओं में पढ़ने का मौक़ा मिलता रहा। इन सबका समवेत प्रभाव यह पड़ा कि विभाजन, उसकी विभीषिका और उसकी समूची प्रक्रिया से जुड़े राजनीतिक व्यक्तित्व मेरे लिए दूर की चीज़ न होकर मेरे अपने ही मनोजगत के अविभाज्य अंग बन गए। और इनके केन्द्र में जिन्ना का होना स्वाभाविक था। गांधी की पचहत्तरवीं जयन्ती पर जो अभिनन्दन ग्रन्थ छपा था, उसका हिन्दी संस्करण ननिहाल में उपलब्ध था। उसमें देश-विदेश के राजनेताओं, विद्वानों, विचारकों, लेखकों तथा प्रशंसकों के गांधी पर लेख और विचार थे। कई में जिन्ना की भी चर्चा थी। धीरे-धीरे जिन्ना और गांधी पर उपलब्ध साहित्य ढूँढ़कर पढ़ने लगा। उससे लगने लगा कि जिन्ना नफ़रत के बजाय सहानुभूतिपूर्ण समझ के हक़दार हैं।

सत्तर के दशक में लगने लगा कि लोगों की रुचि गांधी में घटती जा रही है। कभी-कभी बातचीत के दौरान उनके बारे में जिस अधकचरे ज्ञान का परिचय कई अच्छे-ख़ासे पढ़े-लिखे लोगों में देखने को मिलता था, उससे मैं भारी अचरज में पड़ जाता था। ऐसी स्थिति में जिन्ना के बारे में किसी समझ और जानकारी की उम्मीद निरर्थक थी। जिन्ना के सम्बन्ध में वैसे भी उनके जीवनकाल और उसके बाद भी देश-विदेश

में जानकारी का स्तर वह नहीं था, जो गांधी और नेहरू के सम्बन्ध में था। उस समय *के विश्व के प्रायः हर क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति इन दोनों से न केवल परिचित थे, बल्कि किसी-न-किसी रूप में उनके प्रत्यक्ष-परोक्ष सम्पर्क में भी थे। यहाँ यह जानकारी दिलचस्प* होगी कि जिन्ना के देहान्त के बाद अंग्रेज़ी के विश्वविख्यात नाटककार जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने नेहरू को लिखे 18 सितम्बर, 1948 के अपने पत्र में उनका नाम तक सही न लिखकर 'जिन्नर' लिखा था। उन्होंने आशंका व्यक्त की थी कि 'जिन्नर' का देहान्त उनकी (नेहरू की) इंग्लैंड-यात्रा में बाधक सिद्ध हो सकता है। शॉ ने पत्र के अन्त में यह भी जोड़ा था कि उनके (जिन्नर के) किसी सुयोग्य उत्तराधिकारी के अभाव में अब उन्हें (नेहरू को) ही पूरे भारतीय उपमहाद्वीप का शासन चलाना होगा। इस पृष्ठभूमि में जिन्ना के सम्बन्ध में अज्ञान की कल्पना की जा सकती है। मित्रों के बीच पाकिस्तान और साम्प्रदायिकता पर चर्चा के दौरान जिन्ना का प्रसंग आना अनिवार्य था। साठ के दशक में विभाजन को लेकर मेरे विचार मौलाना आज़ाद की पुस्तक 'इंडिया विंस फ्रीडम' (भारत ने आज़ादी जीती) और डॉ. राम मनोहर लोहिया की पुस्तक 'गिल्टी मेन ऑफ़ इंडिया'ज़ पार्टीशन' पर ही आश्रित थे। चर्चा के दौरान जिन्ना के सम्बन्ध में मेरी कुछ अल्पज्ञ बातें भी मित्रों को अछूती जानकारी-सी लगती थीं। नब्बे के दशक के बीच में दिल्ली में 'हंस' और 'जनसत्ता' के कार्यालयों में शनिवार के दिन चलती साम्प्रदायिकता पर चर्चाओं के दौरान सर्वप्रथम राजेन्द्र यादव और उनके बाद सुधीश पचौरी ने मुझसे कहा कि मैं जिन्ना पर कुछ विस्तारपूर्वक लिखूँ। विषय पर अपनी सीमाएँ जानने के बावजूद मैंने 'हाँ' तो कह दिया, पर मैं जानता था कि इस विषय पर लिखना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए कितना कठिन है। फिर तो यादवजी के तकाज़े शुरू हो गए। मैं अपने ही जाल में फँस गया था। अतः टाल-मटोल करने लगा। पर यादवजी ने रामबाण का प्रयोग किया। 'हंस' के एक अंक में अगले अंक के लिए मेरे लेख की घोषणा कर दी। जैसे यही काफ़ी नहीं था। राजकमल प्रकाशन के निदेशक अशोक महेश्वरी को ख़बर लग गई। उन्होंने फ़ोन से बात तो बाद में की, पुस्तक (जिन्ना पर) छापने का अपना बालसुलभ उत्साह अपने पत्र के माध्यम से पहले ही प्रकट कर दिया। मैं साँसत में पड़ गया। अभी मैं मानसिक रूप से जिन्ना पर लिखने को पूरी तरह तैयार नहीं था। राजेन्द्रजी को फ़ोन कर उलाहना दिया कि घोषणा से पहले मुझसे पूछ तो लेते। उन्होंने पूरी सम्पादकीय दादागीरी से जवाब दिया, "मैं समझ गया था। आप भले आदमी की तरह नहीं लिखेंगे।" बहरहाल उन्होंने सरेआम ढोल मुझ जैसे अज्ञानी के गले में लटका दी थी। उसे बजाने के अलावा, अपनी सीमाओं के शदीद अहसास के बावजूद अब कोई विकल्प नहीं था। बहरहाल, अगर इस ढोल की आवाज़ आपको बेसुरी लगे तो इसके लिए राजेन्द्र यादवजी ज़िम्मेदार होंगे। भर्त्सना के पत्र समझदार पाठक उन्हें ही लिखें।

दरअसल, शुरू में पुस्तक की योजना नहीं थी। पर जैसे-जैसे 'हंस' में आठ किस्तों में 'जिन्ना : एक पुनर्दृष्टि' शीर्षक के अन्तर्गत आठ धारावाहिक लेख छपने लगे, सुधी पाठकों के पत्र और फ़ोन उन्हें पुस्तक-रूप मे प्रकाशित करने के लिए आने लगे। टुकड़ों

में पढ़ना लोगों को असुविधाजनक लगने लगा था। सन् 1998 में दिल्ली से मेरे मुम्बई स्थानान्तरण के फलस्वरूप प्रकाशित सामग्री को परिवर्धित कर पुस्तक का रूप देने की योजना टलती गई। पर विषय पर पढ़ना चलता रहा। इसी बीच 'जिन्ना और गांधी' शीर्षक से दो लेख हरिनारायणजी ने 'कथादेश' में छापे। पुस्तक का आग्रह फिर पुनर्जीवित हो उठा। जनवरी, 2002 में मेरे हैदराबाद स्थानान्तरण से काम फिर रुक गया। वहाँ से पुनः मुम्बई लौटने पर काम दोबारा शुरू हुआ। पुस्तक के पुनर्लिखित और परिवर्धित प्रारम्भिक अंश तीन किस्तों में 'अकार' में गिरिराज किशोरजी ने छापे। पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ अत्यन्त मूल्यवान बातचीत मार्क्सवादी चिन्तक एजाज़ अहमद साहब से हुई। उन्होंने बड़ी आत्मीयता से जिन्ना पर आयशा जलाल की चर्चित पुस्तक 'दि सोल स्पोक्समैन' (अकेला प्रवक्ता) की अपनी प्रति मुझे भेंट की। मेरे पिता के मित्र पाकिस्तान रेडियो के सेवानिवृत्त निदेशक अब्दुल हमीद आज़मी साहब सन् 1995 में जब एक लम्बे अर्से बाद अपने परिवार से मिलने फूलपुर तशरीफ़ ले आए तो उनसे भी विषय पर विस्तारपूर्वक चर्चा हुई। उन्होंने पाकिस्तान लौटकर कुछ अत्यन्त मूल्यवान पुस्तकें और पत्रिकाओं के अंक कृपापूर्वक मेरे पास भेजे। दिल्ली में मौलाना वहीदुद्दीन और मुम्बई में असगर अली इंजीनियर साहब से विषय पर बहुत लाभप्रद बातचीत हुई। डॉ. नामवर सिंह, ज्ञानरंजनजी, मेरे समधी डॉ. सत्यप्रकाश जैन, उर्दू के चर्चित कथाकार सैयद मुहम्मद अशरफ़, हमारे विभागीय सहयोगी और मित्र पारसनाथ पाठक, विनोद कुमार श्रीवास्तव, गुलाम रसूल सूफ़ी, श्री कृष्ण (आनन्द), 'तद्भव' के सम्पादक कथाकार अखिलेश और मेरे बड़े पुत्र चि. आशुतोष लगातार पुस्तक पूरी करने के लिए टोकते रहे। मुम्बई आने के बाद कवि बोधिसत्व का मुझसे आत्मीय जुड़ाव पुस्तक के लिए अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध हुआ।

पुस्तक के लिए महत्त्वपूर्ण चित्र उपलब्ध कराने मे 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' ग्रुप के श्री राम माहेश्वरी का बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ। पुस्तक के रत्ती जिन्ना पर लिखे अध्याय से पता चलेगा कि वह थियोसॉफ़िकल सोसाइटी की एक वरिष्ठ सदस्या और श्रीमती एनी बेसंट की अत्यन्त कर्मठ सहयोगिनी डोरोथी जिनराज दास के व्यक्तित्व से कितना अभिभूत थीं। उनका दुर्लभ चित्र इस पुस्तक में देने का मेरा संकल्प अधूरा ही रह जाता, यदि मेरे मित्र कमलेश मणि तिवारी और चेन्नई में कार्यरत उनके बेटे चि. आयुष मणि तिवारी ने उसे अपने भगीरथ प्रयास से थियोसॉफ़िकल सोसाइटी अडयार, चेन्नई के अभिलेखागार से यथाशीघ्र प्राप्त कर उपलब्ध न कराया होता। किसी भारतीय भाषा की पुस्तक अथवा पत्रिका में डोरोथी जिनराज दास का चित्र सम्भवतः पहली बार प्रकाशित होगा। इस बहुमूल्य सहयोग के लिए परम आत्मीय तिवारीद्वय और थियोसॉफ़िकल सोसाइटी को अनेकशः धन्यवाद। मेरे बड़े भाई श्री आनन्द कुमार और मेरे सहज स्नेही कविवर नईम ने पुस्तक की प्रगति में लगातार रुचि बनाए रखी। पुस्तक यदि अब आपके हाथ में है तो इसका श्रेय काफ़ी हद तक उन्हें भी है। मुम्बई में इस्माइली धर्मगुरु आग़ा ख़ाँ साहब की जनकल्याण सम्बन्धी गतिविधियों से एक लम्बे

अर्से से जुड़े रहे स्व. अब्दुल मुहम्मद फ़र्नीचरवाला ने पाकिस्तान के अख़बारों की कुछ मूल्यवान कतरनों की फ़ोटोकॉपी उपलब्ध कराकर पुस्तक को लिखने में बेशक़ीमती योगदान दिया। उन्हें स्मरण न करना कृतघ्नता होगी। भारत में आग़ा ख़ाँ फाउंडेशन की उपाध्यक्ष श्रीमती हमीदा अल्लाना का भी प्यार भरा सहयोग हमेशा मिलता रहा। पुस्तक के इन सभी प्रेरकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों के प्रति मेरा हार्दिक आभार। स्वतन्त्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में दो राष्ट्र के सिद्धान्त के पक्ष और विपक्ष में डॉ. इक़बाल और मौलाना मदनी के बीच जो बौद्धिक बहस छिड़ी थी, उसकी समझ विकसित करने में सुप्रसिद्ध इस्लामी विद्वान मौलाना वहीदुद्दीन से समय-समय पर हुए विचार-विमर्श से अत्यन्त महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त हुआ। अतः उनके लिए विशेष आभार !

पुस्तक के लिखने में हेक्टर बोलिथो की 'जिन्ना : क्रिएटर ऑफ़ पाकिस्तान', स्टैनली वॉलपर्ट की 'जिन्ना ऑफ़ पाकिस्तान', राजमोहन गांधी की 'अडरस्टैंडिंग दि मुस्लिम माइंड', आयशा जलाल की 'दि सोल स्पोक्समैन', ए.जी. नूरानी की 'दि ट्रॉयल ऑफ भगत सिंह', अकबर एस. अहमद की 'जिन्ना, पाकिस्तान एंड मुस्लिम आइडेंटिटी—दि सर्च फ़ॉर सलादीन' और कानजी द्वारका दास की रत्ती जिन्ना पर उपलब्ध एकमात्र पुस्तक 'रत्ती जिन्ना' से बहुमूल्य सहायता प्राप्त हुई। कानजी द्वारका दास का दुर्लभ चित्र उनकी पुत्रवधू श्रीमती सीलू कानजी और उनके भतीजे दामोदर देवजी दामोदर के सौजन्य से उपलब्ध हो सका। इन सभी सुधी इतिहासविदों और स्नेही सहयोगियों को मेरा कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद।

मेरा विश्वास है कि इतिहास मात्र घटनाओं का संकुल और महत्वाकांक्षियों की नियति के उतार-चढ़ाव का दस्तावेज़ ही नहीं है। उसके विराट मंच पर उभरे काल-प्रेरित अभिनेताओं के मनोजगत की उथल-पुथल से संरचित व्यक्तित्वों के समझौते-टकराव और घात-प्रतिघात उसकी धारा को प्रभावित करने में निर्णयात्मक भूमिका निभाते हैं। कुछ इसी विश्वास के फलस्वरूप जिन्ना के जीवन पर विहंगम दृष्टि डालते हुए उन्हें उनके महत्त्वपूर्ण समकालीनों के साथ-साथ अलग-अलग समझने-परखने की कोशिश इस किताब में मिलेगी। अपनी अपात्रता, कमियां और सीमाओं का मुझे अपराधबोध की हद तक अहसास है। मेरी असफलता, मुझे यक़ीन है, बेहतर समझ के लोगों को इस विषय के साथ बेहतर न्याय के लिए प्रेरित करेगी। पुस्तक आपके हाथ में है—इस गहरे आत्मबोध के साथ कि 'हक़ तो ये है कि हक़ अदा न हुआ।' किताब अब मेरी नहीं, आपकी हुई। इसके साथ आप जैसा चाहें वैसा सलूक करें।

धन्यवाद।

—वीरेन्द्र कुमार बरनवाल

खंड : एक

जीवन-धारा

1.

जन्म, शिक्षा, वकालत और राजनीति-प्रवेश
(सन् 1876 से सन् 1907 तक)

2.

कांग्रेस-विभाजन से प्रथम विश्व-युद्ध के अन्त तक
(सन् 1908 से सन् 1918 तक)

3.

रौलट-रिपोर्ट से ख़िलाफ़त—असहयोग आन्दोलन तक
(सन् 1919 से सन् 1921 तक)

4.

चौरी-चौरा कांड से गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट 1935 के अन्तर्गत सन् 1937 के चुनाव तक
(सन् 1922 से सन् 1937 तक)

5.

सन् 1938 से कैबिनेट मिशन तक
(सन् 1938 से सन् 1946 तक)

6.

माउंटबैटन के हिन्दुस्तान आगमन से विभाजन और देहावसान तक
(सन् 1947 से सन् 1948 तक)

चाँदी-सी त्वचावाले ऋषितुल्य—किन्तु भव्य अभिजात्य से दीप्त व्यक्तित्व के धनी दादाभाई नौरोज़ी को 'काला आदमी' कहकर न केवल उनके प्रति बल्कि समस्त हिन्दुस्तानी समुदाय के प्रति अत्यन्त घृणास्पद जाति-भेद की परिचायक कुत्सित मानसिकता का प्रदर्शन किया गया था। ब्रिटेन और हिन्दुस्तान के अनगिनत संवेदनशील लोगों की तरह जिन्ना भी इससे गहरे आहत हुए। जिन्ना ने बहन फ़ातिमा को इस सम्बन्ध में लिखा था, "यदि दादाभाई काले हैं तो मैं उनसे भी काला हूँ। इस तरह की ग़लीज़ मानसिकतावाले अंग्रेज़ राजनेताओं से हिन्दुस्तान किस इंसाफ़ की उम्मीद कर सकता है!"

1

जन्म, शिक्षा, वकालत और राजनीति-प्रवेश

सन् 1876 से सन् 1907 तक

मुहम्मद अली जिन्ना के पूर्वज सत्रहवीं सदी के अन्त और अट्ठारहवीं सदी के प्रारम्भ के दौरान कभी गुजरात के काठियावाड़ इलाक़े में राजकोट ज़िले के गाँव पानेली में बाहर से आकर बस गए थे। पानेली मोहनदास करमचन्द गांधी की जन्मभूमि राजकोट ज़िले के ही क़स्बे पोरबन्दर से लगभग तीस किलोमीटर दूर उत्तर दिशा में स्थित है। जिन्ना के पूर्वजों की भूमि को लेकर दिलचस्प मतभेद है। उनके सुप्रसिद्ध जीवनीकार स्टैनली वॉलपर्ट ने उनकी विस्तृत जीवनी में उनके पूर्वजों का मूल इस्मायली सम्प्रदाय के धर्मगुरु आग़ा ख़ाँ के अनुयायी खोजा-समाज के एक ऐसे वर्ग में ढूँढ़ने का प्रयास किया है जो दसवीं और सोलहवीं सदी के बीच फ़ारस के पश्चिमी भाग में बस गया था। जिन्ना के जीवन पर आधारित विवादास्पद फ़िल्म के निर्माता तथा कैम्ब्रिज स्थित पाकिस्तानी इतिहासविद् अकबर एस. अहमद ने जिन्ना की छोटी बहन फ़ातिमा के हवाले से बताया है कि जिन्ना-परिवार अपने पूर्वजों का मूल स्थान ईरान मानता था। जिन्ना के एक और पाकिस्तानी जीवनीकार अज़ीज़ बेग के अनुसार जिन्ना ने स्वयं कभी ज़िक्र किया था कि उनके पूर्वज शाहीवाल (पंजाब) के राजपूत थे, जिन्होंने इस्मायली खोजा परिवार की एक सुन्दर लड़की से प्रेम-विवाह कर लिया था और वहाँ से जाकर काठियावाड़ क्षेत्र में बस गए थे। आजीवन साथ-साथ रहे भाई-बहन के हवाले से परिवार के मूल स्थान के बारे में परस्पर-विरोधी कथन क़ाफ़ी दिलचस्प हैं। इसके बरअक्स जिन्ना के सबसे पहले जीवनीकार हेक्टर बोलिथो ने जिन्ना की चचेरी भाभी फ़ातिमा बाई (जो संयुक्त परिवार में ब्याह कर 1884 ई. में आई थीं) और उनके बेटे मुहम्मद अली गांग जी से विस्तारपूर्वक चर्चा के बाद, उनके पास उपलब्ध दस्तावेज़ों के आधार पर माना है कि जिन्ना के पूर्वज मूलतः पंजाब के मुल्तान ज़िले के हिन्दू थे। जिन्ना के हिन्दू मूल की पुष्टि गांधीजी के पौत्र राजमोहन गांधी ने भी की है। उनके पूर्वज वैश्य समाज के अन्तर्गत आनेवाली लोहाना जाति के थे। लेन-देन (साहूकारा) के व्यवसाय के सिलसिले में मुल्तान ज़िले की लोहाना (ठक्कर) जाति का एक बड़ा वर्ग सत्रहवीं सदी के अन्त और अट्ठारहवीं सदी के प्रारम्भ में काठियावाड़ के इलाक़े में बस गया था। एक अर्से तक उन्हें स्थानीय व्यापारी समाज में मुल्तानी ही कहा जाता था। मुल्तान के सेठों की हुंडी की साख व्यापारी समाज के बीच दूर-दूर तक थी। साहूकारा के वंशानुगत काम के अलावा लोहाना समाज किराने के व्यवसाय से भी जुड़ा था।

काठियावाड़ क्षेत्र के लोहाना समुदाय के कई परिवारों ने उन्नीसवीं सदी के पहले-दूसरे दशक में हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। जिन्ना के पितामह पुंजाभाई वाल जी ठक्कर का परिवार भी उनमें से एक था। परम्परा से पुंजाभाई वाल जी ठक्कर का परिवार वैष्णव था—श्रीनाथ जी का भक्त। उनके माता-पिता दोनों ने 'ओइम् नमो भगवते वासुदेवाय' का जाप करते हुए अन्तिम साँसें ली थीं। दो पीढ़ी पहले लोहाना (ठक्कर) समुदाय के ही हिन्दू से मुसलमान बने इस्मायली धर्मगुरु आगा खाँ के अनुयायी आदमजी खोजा नामक एक सज्जन उनके मित्र और पड़ोसी थे। उनसे प्रभावित पुंजाभाई वाल जी ने भी राजकोट में आगा खाँ के अनुयायी के रूप में इस्लाम धर्म अंगीकार कर लिया था। पर धर्म-परिवर्तन के पूर्व उन्होंने अपनी धर्मपत्नी और बच्चों को विश्वास में नहीं लिया था। फलस्वरूप जब मुसलमान बनकर वह पानेली लौटे थे तो घर में कोहराम मच गया था। तीन दिनों तक घर में चूल्हा तक नहीं जला था। छोटे-छोटे बच्चों तक ने अन्न-जल त्याग दिया था। जल्दबाजी में लिए गए धर्म-परिवर्तन के अपने निर्णय से संतप्त पुंजाभाई वाल जी ने इस बीच पुनः हिन्दू धर्म में लौटने के प्रयास किए। पर वह सफल नहीं हो सके। नतीजतन अब परिवार के पास मुस्लिम बने रहने के अलावा कोई विकल्प नहीं रह गया था। कम्प्यूटर उद्योग से जुड़े सम्प्रति विश्व के समृद्धतम व्यक्तियों में शामिल अज़ीम हाशम प्रेमजी के पूर्वज भी काठियावाड़ क्षेत्र के लोहाना जाति के हिन्दू थे। उन्होंने भी लगभग उसी समय इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था।

जिन्ना के अनतिदूर हिन्दू मूल की प्रतिध्वनि उनकी माँ मिट्ठूबाई और बुआ मानबाई तथा परिवार के पुरुष सदस्यों वालजी पुंजाभाई, गांग जी, जिण्णा भाई और नत्थूभाई जैसे नामों में सुनाई पड़ती है। ये नाम किसी भी गुजराती हिन्दू परिवार की बहू-बेटी और भाई-बेटे के हो सकते थे। हिन्दू धर्म को छोड़कर इस्लाम की दीक्षा के बावजूद इन नए मुसलमान परिवारों में लम्बे अर्से तक कई हिन्दू तीज-त्यौहार मनाने की परम्परा बनी हुई थी। शादी के समय भी कई हिन्दू रीति-रिवाजों का पालन उनमें काफ़ी समय तक प्रचलित रहा। इस्लाम धर्म स्वीकार करते समय इसकी एक अल्पसंख्यक शिया शाखा में भी अल्पसंख्यक व्यवसायी इस्मायली समाज में घुल-मिल पाना उन्हें अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक लगा होगा। यहाँ यह जानकारी दिलचस्प होगी कि पाकिस्तान की अवधारणा को एक वैचारिक आधार प्रदान करनेवाले कवि-चिन्तक इक़बाल के पितामह भी कश्मीर के सप्रू ब्राह्मण थे, जिन्होंने हिन्दू धर्म को त्यागकर इस्लाम अंगीकार कर लिया था। इक़बाल कभी भी अपने हिन्दू मूल को स्वीकार करने में संकोच का अनुभव नहीं करते थे। वस्तुतः उन्हें अपने ब्राह्मण रक्त पर गर्व था। उनकी ये पंक्तियाँ इसका सबूत हैं—

मैं अस्ल का ख़ास सोमनाती,
आबा मेरे लातियो-मनाती
है फ़लस्फ़ा मेरी आबो-गिल में,
पेशीदा है मेरे रेशहाए दिल में।

---

* लात और मनात इस्लाम के उदय के पूर्व अरब के दो देवताओं के नाम थे, जिनकी मूर्तियों की पूजा की जाती थी। लाती-मनाती का तात्पर्य है इन मूर्तियों के उपासक।

(मैं सोमनाथ का असली विशिष्ट अनुयायी हूँ। मेरे पूर्वज मूर्तिपूजक रहे हैं। दर्शन तो मेरे शरीर के मिट्टी-पानी में रचा-बसा है। वह मेरे अन्तर के नस-नस में व्याप्त है।)

मेरा बीनी कि दर हिन्दोस्तां दीगर नमी बीनी,
बरहमन ज़ादये रम्ज आशनाये रूमो तब्रेज़ अस्त।

(मुझे देखो। समूचे हिन्दोस्तां में मुझ जैसा दूसरा नहीं दिखेगा। ब्राह्मण कुलोद्भव में मौलाना रूमी और शम्स तब्रेज़ का मर्मज्ञ हूँ।)

इक़बाल के बरअक्स जिन्ना ने अपने हिन्दू मूल को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करने का कभी भी कोई संकेत नहीं दिया।

पानेली में ही जिन्ना के पिता जिण्णाभाई पुंजाभाई का जन्म, स्टैनली वॉलपर्ट के अनुसार, सन् 1850 ईस्वी में हुआ था। अकबर एस. अहमद के अनुसार उनका जन्म सन् 1857 में और देहान्त सन् 1901 ईस्वी में हुआ था। जिण्णा का अर्थ गुजराती में छोटा या नन्हा होता है। यह नाम उन्हें उनके दुबले-पतले शरीर और अपेक्षाकृत छोटे क़द के कारण दिया गया था। जिण्णाभाई नाम गुजरात के हिन्दुओं में भी प्रचलित है। पानेली में मिट्ठू बाई से विवाह के कुछ समय बाद जिण्णाभाई पुंजाभाई कराची आ गए थे। कुछ समय बाद उनके वड़े भाई गांग जी पुंजाभाई भी यहाँ उनके साथ जुड़ गए थे। उन्हीं की पुत्रवधू फ़ातिमाबाई, जो कि जिन्ना के चचेरे बड़े भाई की पत्नी होने के नाते उनकी भाभी होती थीं, से और उनके (फ़ातिमाबाई के) बेटे मुहम्मद अली गांग जी से विस्तृत बातचीत के बाद हेक्टर वोलिथो ने जिन्ना के पूर्वजों के मूल स्थान मुल्तान और उनके हिन्दू होने की पुष्टि की थी।

कराची आकर कुछ समय बाद जिण्णाभाई पुंजाभाई ने अपने नाम से जुड़े परम्परागत पितृनाम पुंजा भाई में से भाई शब्द हटा दिया था। अब वह जिण्णाभाई पुंजा ही रह गए थे। कराची में एक सँकरी-सी सड़क न्यूनहैम रोड के नुक्कड़ पर स्थित दोमंज़िले मकान 'वज़ीर मैन्सन' के दूसरे तल्ले पर उन्होंने दो कमरे किराए पर ले लिये थे। मकान एक निम्नमध्यवर्गीय इलाक़े में था। इसके आसपास रिक्शे, तांगे और ऊँटगाड़ियों का जमघट लगा रहता था। सरोजिनी नायडू ने जिन्ना को बेफ़िक्र समृद्धि में पले एक धनी व्यापारी की ज्येष्ठ सन्तान के रूप में निरूपित किया है। यह केवल अंशतः सही है। जिन्ना के जन्म के समय निश्चय ही उनके पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। इसी मकान में जिन्ना का जन्म हुआ था।

आधिकारिक रूप से यद्यपि जिन्ना का जन्म 25 दिसम्बर, 1876 को माना जाता है, किन्तु इस तिथि की सच्चाई के बारे में शंकाएँ व्यक्त की गई हैं। उन्हें कराची की जिस पाठशाला में सबसे पहले भर्ती कराया गया था, उसका नाम था सिन्ध मदरसा-तुल-इस्लाम। इसमें उनकी जन्मतिथि 20 अक्टूबर, 1875 दर्ज है। छः वर्ष और अट्ठारह दिन पूर्व गांधी का जन्म भी इसी महीने हुआ था। मदरसे के बाद जिन्ना को कराची के प्रतिष्ठित क्रिश्चियन मिशन स्कूल में दाख़िल कराया गया था। शायद यहीं बालक जिन्ना के मन में 25 दिसम्बर के प्रति (प्रभु ईसा मसीह के जन्म दिन और क्रिसमस के पर्व होने के कारण) आकर्षण पैदा हुआ। फलस्वरूप उसने इस

तिथि को अपना भी जन्मदिन मान लिया। यह कोई अपवाद नहीं है। हिन्दी के युगान्तरकारी कवि 'निराला' अपनी सही जन्मतिथि के स्थान पर अपना जन्मदिन बसन्त पंचमी को मानते थे। हिन्दी के वरिष्ठ मार्क्सवादी समीक्षक डॉ. नामवर सिंह अपनी वास्तविक जन्मतिथि की जगह अपना जन्मदिन पहली मई को मानते हैं। बहरहाल, जिन्ना से छोटी उनकी चार बहनों के नाम रहमत, मरियम, फ़ातिमा और शिरीन थे। इन बहनों के बाद उनके छोटे भाई अहमद अली और बन्दे अली थे। जिन्ना के जीवन में आगे चलकर फ़ातिमा के अलावा अपने अन्य भाई-बहनों से किसी भी प्रकार की निकटता या आत्मीय सम्बन्ध के संकेत नहीं मिलते हैं।

बचपन में उन्हें माता-पिता प्यार से 'मामद' कहते थे। गौरवर्ण और सुन्दर, पर कृशकाय 'मामद' का स्वास्थ्य अक्सर माँ-बाप की चिन्ता का विषय बना रहता था। लगभग डेढ़ दशक के दौरान जिण्णाभाई पुंजा ने अपने व्यापार में बहुत बड़ी कामयाबी हासिल कर ली थी। वह कपास, ऊन, तिलहन, चमड़ा और अनाज जैसे कच्चे माल का इंग्लैंड को निर्यात और वहाँ से चीनी, कपड़े, धातु और चमड़े से बने सामान का आयात करने लगे थे। आयात-निर्यात और ब्याज पर लेन-देन के धन्धे से अर्जित उनकी समृद्धि का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अपने व्यावसायिक जीवन के चरम पर उनकी हैसियत लगभग आठ करोड़ आँकी गई थी। छः साल की उम्र में मामद को घर पर पढ़ाने के लिए अलग से शिक्षक की नियुक्ति कर दी गई थी। खिलन्दड़ मामद को औपचारिक शिक्षा में दिलचस्पी नहीं थी। गणित से उसे ख़ास नफ़रत थी। जिण्णाभाई पुंजा की इकलौती बहन मानबाई बम्बई के एक समृद्ध खोजा व्यवसायी पीरभाई से ब्याही थीं। मानबाई अपने प्यारे भतीजे मामद को, पढ़ाई-लिखाई के प्रति कराची में उसकी उदासीनता को ध्यान में रखते हुए 1887 में अपने साथ बम्बई ले आई। सुसंस्कृत, हँसमुख और उदारमना बुआ ने 'मामद' को पहले मुस्लिम अंजुमने इस्लाम और कुछ ही समय बाद सर गोकुलदास तेज प्राइमरी स्कूल में भर्ती करा दिया। बम्बई की दुनिया कई मायनों में बालक जिन्ना को कराची से अलग, आकर्षक, उत्तेजक और चुनौती-भरी लगी। उसका मन यहाँ लगने लगा था। इस बीच अपने बड़े बेटे से अलग हो माँ मिट्ठू बाई लगातार छटपटाती रहती थीं। उनका स्वास्थ्य ख़राब रहने लगा था। नतीजतन पिता जिण्णाभाई पुंजा 'मामद' को फिर कराची ले आए।

शुरू में मामद को गली में कंचे खेलना बहुत पसन्द था। पर शीघ्र ही कंचे की जगह 'क्रिकेट' ने ले ली। यह एक शरीफ़ाना खेल था। इनके बाल-सखा नानजी जाफ़र के अनुसार एक दिन गली में कंचे खेलते अपने पुराने दोस्तों से किशोर मामद ने कहा था, "धूल में कंचे मत खेला करो। इससे कपड़े ख़राब होते हैं और हाथ गन्दे। इसे छोड़कर अब क्रिकेट खेलना चाहिए।" किशोर जिन्ना का यह कथन उनकी आगामी जीवन-शैली का पूर्वाभास था। आजीवन वह अपने सुरुचिपूर्ण कपड़ों को मैला होने से और हाथों को गन्दा होने से बड़े एहतियात से बचाते रहे। पसीने से गँधाते और धूल-मिट्टी सने हाथ-पैरवाले लोगों के साथ जनान्दोलन में कन्धे से कन्धा मिलाकर भागीदारी शायद इसी कारण उन्हें कभी रास नहीं आई। बहरहाल सिन्ध मदरसा और क्रिश्चियन मिशन

हाईस्कूल में जैसे-तैसे पढ़ाई करते हुए किशोर जिन्ना ने सन् 1892 में वम्बई विश्वविद्यालय का हाईस्कूल का इम्तहान पास कर लिया।

कराची में जिण्णाभाई पुंजा का अव ऊँची नस्ल के अरवी घोड़ों का अपना अस्तबल था। साथ ही उनके पास अपनी ख़ुद की ख़ूबसूरत और शानदार वग्घियाँ थीं। मामद को पढ़ाई-लिखाई से कहीं ज़्यादा घुड़सवारी का शौक पैदा हो गया था। अपनी उम्र के अनेक बेफ़िक्र लड़कों की तरह उसे कोर्स की किताबों में दिलचस्पी क़तई नहीं थी। वह एक निहायत ज़िन्दादिल, आज़ाद तबियत, चंचल और सुन्दर किशोर था। उसे क़ावू में रखना आसान नहीं था। नवसमृद्ध पिता का अपने व्यवसाय के सिलसिले में एक ब्रिटिश कम्पनी के कराची स्थित मुख्य प्रवन्धक सर फ्रेडरिक ले क्रॉफ़्ट से परिचय हो गया था। अपने पिता के साथ मामद सर फ्रेडरिक से कई वार मिला था। सर फ्रेडरिक के चुम्बकीय तरुण व्यक्तित्व का मामद पर गहरा प्रभाव पड़ा था। किशोर 'मामद' ने भी सर फ्रेडरिक को अपनी ओर आकर्पित किया था। 'मामद' में सर फ्रेडरिक को अच्छी-ख़ासी संभावना नज़र आई थी। फलस्वरूप उसने 'मामद' को अपने लन्दन स्थित मुख्यालय में काम सीखने के लिए वहाँ भेजने का प्रस्ताव जिण्णाभाई पुंजा के सामने रखा। यह प्रस्ताव वाप-बेटे दोनों ने सहर्प स्वीकार कर लिया। माँ मिट्ठूवाई को जब बेटे की विलायत-यात्रा का पता चला तो उन्हें डर लगने लगा कि वहाँ किसी मेम के प्रेम-जाल में फँसकर उनका वेटा कहीं शादी न कर वैठे। अतः उसे मनाकर जिण्णाभाई पुंजा के पैतृक गाँव पानेली के ही खोजा सम्प्रदाय की एक चौदह वर्पीया किशोरी एमिवाई के साथ उसका निकाह कर दिया गया। उस समय मामद की उम्र सोलह वर्प थी।

वालिका वधू एमिवाई के हाथ की निकाह की मेहँदी का रंग अभी छूटा भी नहीं था कि उसका किशोर पति 'मामद' जनवरी 1893 में कराची से लन्दन के लिए रवाना हो गया। वहाँ पहुँचते ही फ़रवरी के उत्तरार्द्ध में डगलस ग्राहम एंड कम्पनी के लन्दन स्थित मुख्यालय में उसका प्रशिक्षण कार्य शुरू हो गया। लन्दन के कुहरे और वहाँ की वला की ठंड से मामद का पाला पहली वार पड़ा था। उस अज्ञात-कुल-शील सात समुन्दर पार महानगर की ठंड और कुहासे के वीच सुदूर कराची और वहाँ छूटे और भरे-पूरे परिवार की स्मृति के दंश से वह अक्सर उदास हो जाता था। इस लाड़ले किशोर की यह उदासी अकेलेपन के अहसास में घुलकर अक्सर कई गुना और वढ़ जाती थी। इसके ऊपर कम्पनी के प्रशिक्षण में उसका मन बिल्कुल नहीं लग रहा था। पर एक राहत थी। किसी भी तरह की आर्थिक तंगी का सामना उसे वहाँ नहीं करना पड़ रहा था। पिता ने उसके लिए लन्दन के एक वैंक में उसके वहाँ तीन साल के आरामदेह प्रवास के लिए पर्याप्त पैसा जमा कर दिया था। 'मामद' से कम्पनी का प्रशिक्षण झेला नहीं जा रहा था। आख़िरकार उसने अप्रैल के पूर्वार्ध में उससे छुटकारा पा लिया। कराची में जब पिता को अपने वेटे के इस निर्णय का पता चला तो वह सख़्त नाराज़ हुए। पर कराची में वैठकर वह कुछ कर नहीं सकते थे। लन्दन के प्रारम्भिक दो मास के प्रवास में किशोर मामद को यह पता चल गया था कि इंग्लैंड का सबसे प्रतिष्ठित पेशा वकालत है। लन्दन पहुँचकर वहाँ घूमते हुए 'मामद' ने वहाँ के प्रसिद्ध वार लिंकन्स इन के प्रवेश द्वार पर

विश्व-इतिहास में प्रसिद्ध क़ानून निर्माताओं के भित्तिचित्रों के बीच पैग़म्बर मुहम्मद साहब का चित्र भी देखा था। इस्लाम में मुहम्मद साहब की मानवीय आकृति का चित्र या मूर्ति के माध्यम से प्रस्तुति वर्जित है। फिर भी इस्लाम के प्रवर्तक की विश्व के महान क़ानून-निर्माताओं के बीच उपस्थिति मामद के लिए अत्यन्त प्रेरणादायी सिद्ध हुई। आख़िरकार 'मामद' ने अपनी बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए लिंकन्स इन को ही चुनने का निर्णय ले लिया। जून 1893 के अन्त में 'मामद' को वहाँ प्रवेश मिल गया।

किशोर 'मामद' ने तरुणाई की ओर बढ़ते हुए जहाँ अपने रहन-सहन और पहनावे में सुरुचि और आधुनिकता पर ख़ास ध्यान दिया, वहीं उसने अपने नाम का आधुनिकीकरण भी ज़रूरी समझा। मुहम्मद अली जिन्नाभाई की जगह वह अब एम.ए. जिन्ना बन गया था। बैरिस्टरी की पढ़ाई के दौरान जिन्ना ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि राजनीति ओर क़ानूनी पेशे के बीच चोली-दामन का सम्बन्ध है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापकों में अग्रणी ओर उस समय देश की राजनीति में पितामह तुल्य समादृत बम्बई के प्रसिद्ध गुजराती भापी उद्यमी ओर क़ानूनवेत्ता दादाभाई नौरोज़ी ने जब 1893 में लेबर पार्टी के उम्मीदवार के रूप में ब्रिटेन की संसद की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ा, तो उनके चुनाव-प्रचार में अनेक हिन्दुस्तानी युवकों की तरह जिन्ना ने भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। सौभाग्यवश दादाभाई नौरोज़ी मात्र तीन वोट से चुनाव जीतकर ब्रिटेन की संसद के निचले सदन, हाउस ऑफ़ कॉमन्स के पहले हिन्दुस्तानी सांसद बने। उनका वहाँ पहुँचना टोरी दल और उनके निवर्तमान प्रधानमन्त्री लॉर्ड सेल्सबरी को फूटी आँखों भी नहीं भाया। उन्होंने चुनाव-अभियान और बाद मे भी, चाँदी सी त्वचा वाले ऋपितुल्य किन्तु भव्य आभिजात्य से दीप्त व्यक्तित्व के धनी दादाभाई को 'काला आदमी' कहकर, न केवल उनके प्रति बल्कि समस्त हिन्दुस्तानी समुदाय के प्रति अपनी घृणास्पद जाति-भेद की परिचायक कुत्सित मानसिकता का प्रदर्शन किया था। ब्रिटेन और हिन्दुस्तान के अनगिनत संवेदनशील लोगो की तरह जिन्ना भी इससे गहरे आहत हुए। स्टेनली वॉलपर्ट के अनुसार, जिन्ना ने बहन फ़ातिमा को इस सम्बन्ध मे लिखा था, "यदि दादाभाई काले हैं तो मैं उनसे भी काला हूँ। इस तरह की गलीज़ मानसिकतावाले अंग्रेज़ राजनेताओं से हिन्दुस्तान किस इसाफ़ की उम्मीद कर सकता है।" स्टैनली वॉलपर्ट का यह कथन सही नहीं प्रतीत होता। सम्भव है जिन्ना ने यह पत्र किसी और को लिखा हो। सन् 1893 में फ़ातिमा को यह पत्र लिखा जाना असम्भव है। उनका जन्म ही जिन्ना के लंदन-प्रवास के दोरान सन् 1893 में हुआ था। हिन्दुस्तान मे सेल्सबरी की इस टिप्पणी पर गहरी प्रतिक्रिया हुई थी। इस पर अपने आक्रोश और मर्मान्तक पीड़ा को लोगों ने अनेक ढंग से व्यक्त किया था। यहाँ यह जानकारी दिलचस्प होगी कि हिन्दी के युगान्तरकारी रचनाकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रिय सखा कविवर बद्रीनाथ चोधरी 'प्रेमघन' ने तत्काल एक मार्मिक कविता ब्रजभापा में लिखी थी, जिसकी कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

अचरज होत तुमहुँ सम गोरे बाजत कारे।
तासों कारे 'कारे' शब्दहूँ पर हैं वारे॥

कारे काम, राम, जलधर जल-बरसनवारे।
कारे लागत ताही सो कारन को प्यारे॥
यातें नीको है तुम 'कारे' जाहु पुकारे।
यहै असीस देत तुमको मिलि हम सब कारे॥
सफल होहिं मन के सबही संकल्प तुम्हारे।

लन्दन में जिन्ना अक्सर हाइड पार्क जाया करते थे। वह एक ऐसा जीवन्त स्थल है, जहाँ हमेशा आज भी लगातार भाषण होते रहते हैं। वहाँ श्रोताओं की कमी भी नहीं रहती। तरुण जिन्ना ने वक्तृत्व कला के कई गुर यहाँ के भाषणों से भी सीखे थे। उसने ब्रिटेन की संसद की कार्यवाही को दर्शक गैलरी से कई बार ध्यानपूर्वक देखा था। इंग्लैंड को संसद की जननी (मदर ऑफ़ पार्लियामेंट) कहा गया है। वहाँ की संसद की कार्यवाही के दौरान सांसदों के गरिमामय व्यवहार, उनके भाषणों की गहरी बौद्धिकता, तर्क-वितर्क की बारीकियाँ, मर्माहत कर देनेवाले कटाक्ष तथा विरोधी को निरस्त्र करने के लिए छोड़े गए वाग्बाण, इन सभी से जिन्ना गहरे प्रभावित हुए थे। मन ही मन सभी चीज़ों को वह गहराई से जाने-अनजाने आत्मसात करते जा रहे थे। लन्दन का ब्रिटिश म्यूज़ियम व वाचनालय भी उनका प्रिय स्थल था जहाँ वह अक्सर घंटों न केवल क़ानून की पुस्तकें और पत्रिकाएँ पढ़ते रहते थे, बल्कि इंग्लैंड की राजनीति, आयरलैंड की आज़ादी के आन्दोलन, अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक नीति और हिन्दुस्तान के बारे में उनके नज़रिए तथा सोच की जानकारी भी हासिल करते जा रहे थे। पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों में अपने देश के शासन में हिस्सेदारी के लिए जो जागरूकता आ रही थी और इंडियन नेशनल कांग्रेस के सदस्यों द्वारा इस दिशा में जो माँगें उठाई जा रही थीं, जिन्ना इससे भी अच्छी तरह परिचित होते जा रहे थे। लन्दन के ऐतिहासिक स्थलों, वहाँ की इमारतों तथा लम्बी बौद्धिक परम्परा-समृद्ध संस्थाओं को तरुण जिन्ना मात्र एक पर्यटक की जिज्ञासा से नहीं देख रहे थे। उनका वह बहुत कुछ अपने अन्दर उतारते चल रहे थे, जिसने आगे चलकर उनके व्यक्तित्व और मनोजगत को रचने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

किशोरावस्था और तरुणाई के वय:सन्धिकाल पर लन्दन पहुँचे जिन्ना के लगभग ढाई साल के लन्दन-प्रवास में कुछ रोमानी और शरारती क्षण भी आए। उनकी एक विधवा मकान मालकिन की सुन्दर किशोरी कन्या ने अपने घर पर क्रिसमस की एक पार्टी के दौरान चल रहे मनोरंजक खेल में जब उनके गले में हाथ डालकर ख़ुद को चूमने का आग्रह किया, तो जिन्ना ने हिन्दुस्तानी नैतिकता का वास्ता देकर उसे विनम्रतापूर्वक मना कर दिया था। एक बार कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों के बीच हुई नौका-प्रतियोगिता के दौरान दोस्तों के साथ सड़क के किनारे पड़े एक ठेले पर चढ़कर उसे सड़क के बीच में धकेलकर हुड़दंग करते समय पुलिस दोस्तों सहित पकड़कर उन्हें थाने ले गई थी। पर चालान करने की जगह चेतावनी देकर उन्हें दोस्तों सहित छोड़ दिया गया था। अंग्रेज़ी कविता को निजी क्षणों में थोड़ा ऊँचे स्वर में पढ़ने का चाव उन्हें कराची में ही पैदा हो गया था। लन्दन पहुँचने पर वहाँ की थिएटर की दुनिया ने उन्हें अपनी ओर गहराई से खींचा था। शेक्सपियर के नाटकों का मंचन देखना न केवल उन्हें बहुत

अच्छा लगता था, बल्कि उनके मन में उनमें भाग लेने की लालसा लगातार तीव्रतर होती जा रही थी। वह अपने को रोमियो (शेक्सपियर के प्रसिद्ध रोमांटिक नाटक 'रोमियो और जूलिएट' के नायक) की भूमिका में अक्सर कल्पना करते रहते थे। लिंकन्स इन जैसे प्रतिष्ठित क़ानूनी संस्थान से बैरिस्टर का ख़िताब हासिल करने के बावजूद वह थिएटर को अपने कैरियर के रूप में चुनना चाहते थे। इस उद्देश्य से जब प्रारम्भिक परीक्षण में कामयाब होकर तरुण जिन्ना ने लन्दन की एक प्रसिद्ध थिएटर कम्पनी से अनुबन्ध करने के बाद पिता को कराची ख़त के ज़रिए अपना इरादा बताया, तो गहरे व्यापारिक संकट से जूझते जिण्णाभाई पुंजा की प्रतिक्रिया का अन्दाज़ा लगाना कठिन नहीं होगा। लगातार तेज़ी से डूबते व्यवसाय के बीच मामद के इस ख़त ने रही-सही कसर पूरी कर दी।

पिता ने व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए मामद को एक प्रतिष्ठित कम्पनी के वरिष्ठ अधिकारी की सिफ़ारिश के साथ लन्दन भेजा था। उसने मनमाने ढंग से प्रशिक्षण छोड़कर एक दूसरी राह अख़्तियार कर ली थी और अब वह उससे भी मुँह मोड़कर नाटक की दुनिया से नाता जोड़ने पर आमादा था। निश्चय ही अभिनय उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में हिन्दुस्तान में एक सम्मानित पेशा नहीं माना जाता था। इसका अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि लगभग उसी समय काशी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आग्रह पर एक नाटक में दाढ़ी-मूँछ मुड़ाकर स्त्री पात्र का अभिनय करने के कारण उस युग के हिन्दी के प्रतिष्ठित युवा लेखक पंडित प्रताप नारायण मिश्र को उनके पिता ने घर से निकाल दिया था। लिहाज़ा जिण्णाभाई पुंजा ने बेटे मामद को परिवार के साथ गद्दारी करने से बाज आने की चेतावनी देते हुए तुरन्त घर लौट आने की हिदायत दी। पिता ने उस ख़त में मामद की माँ मिट्ठूबाई और लन्दन के लिए रवाना होने से कुछ दिन पहले ही ब्याहकर लाई गई उसकी बालिका वधू एमिबाई के देहान्त की सूचना भी दी थी। आख़िरकार अपनी बैरिस्टरी की सनद हासिल कर मुहम्मद अली जिन्ना 16 जुलाई, 1896 को लन्दन से हिन्दुस्तान के लिए रवाना हो गए। लन्दन प्रवास के दौरान कराची में पिता के लगभग डूब चुके व्यवसाय और माँ तथा पत्नी के देहान्त के बाद उनके लिए अब किसी भी तरह का कोई आकर्षण नहीं बच गया था। लन्दन के बैंक में अपनी बाक़ी राशि बम्बई के एक बैंक में ट्रांसफर कर अवसर और महत्वाकांक्षा की इस महानगरी में अपनी क़िस्मत आजमाने का फ़ैसला उन्हें निस्वतन अधिक वाजिब लगा। नियति ने लगता है, उनकी वृहत्तर भूमिका का ताना-बाना इस महानगर में पहले ही बुन रखा था।

लन्दन से जिन्ना सीधे कराची पहुँचे थे। दो-तीन दिन वहाँ बिताकर उदास मन से वह बम्बई आ गए थे। यहाँ चर्नी रोड पर स्थित अपोलो रेलवे होटल में उन्होंने एक कमरा किराए पर ले लिया था। यहाँ से बम्बई हाईकोर्ट नज़दीक था। 24 अगस्त, 1896 को वह हाईकोर्ट की बार के सदस्य बन गए थे। जिस समय जिन्ना यहाँ पहुँचे थे, बम्बई तथा उसके आसपास के शहरों में महामारी का प्रबल प्रकोप था। उन्हें पता था कि इस संक्रामक रोग से बचने के लिए व्यक्तिगत सफ़ाई और साफ़-सुथरे परिवेश के साथ ही, जहाँ तक सम्भव हो, अनचाहे सम्पर्क-सम्बन्ध से बचना भी आवश्यक है। अपनी वेशभूषा
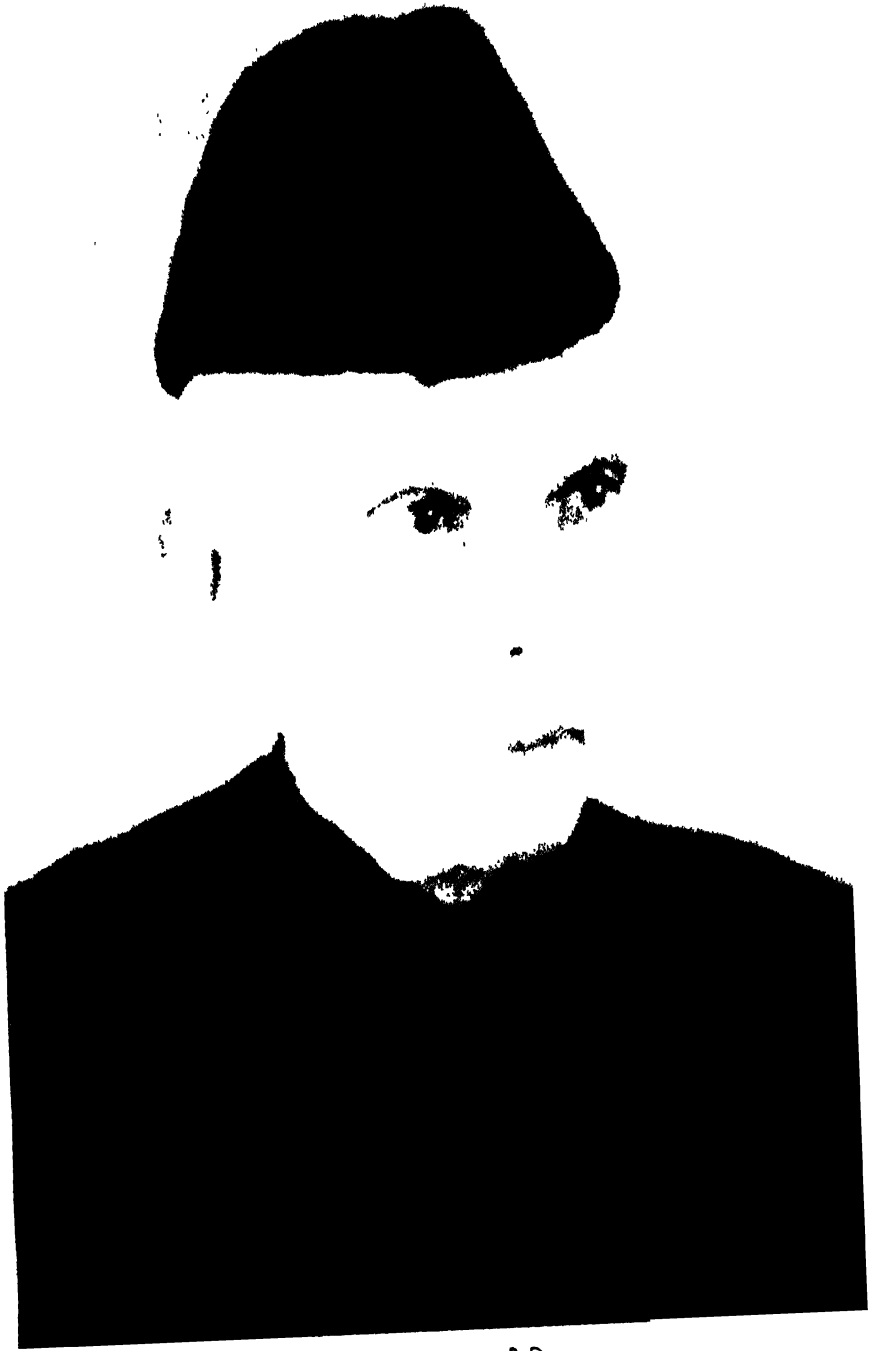
क़ायदे आज़म मुहम्मद अली जिन्ना
(1876-1948)

मुहम्मद अली जिन्ना सोलह वर्ष की आयु में सिन्धी पोशाक में (1892)

मुहम्मद अली जिन्ना (1910)

मुहम्मद अली जिन्ना, तरुण बैरिस्टर

मुहम्मद अली जिन्ना

मुहम्मद अली जिन्ना

सर सैयद अहमद ख़ाँ (1817-1898)

बदरुद्दीन तैय्यब जी (1844-1906)
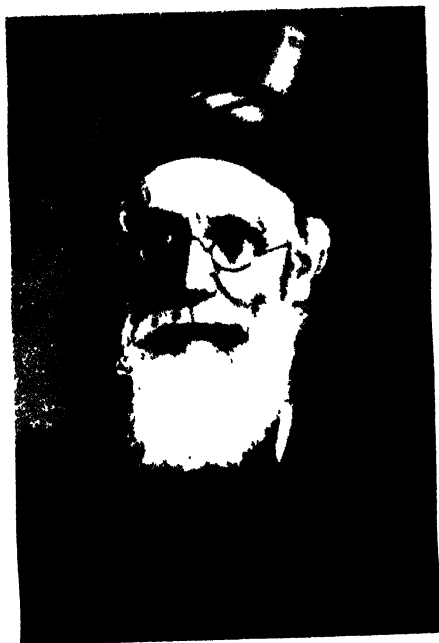
दादा भाई नौरोजी (1825-1917)

सर फ़िरोज शाह मेहता (1845-1915)

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक
(1856-1920)
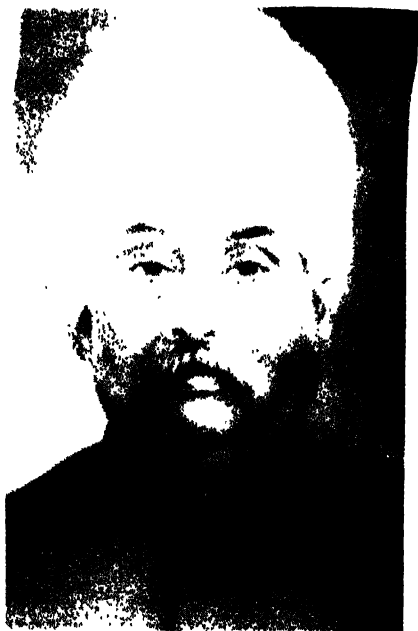
लाला लाजपत राय
(1865-1928)
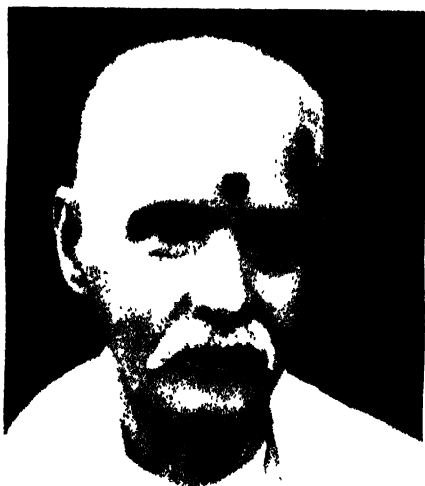
महामना पं. मदन मोहन मालवीय
(1861-1946)

विपिन चन्द्र पाल
(1858-1932)

गोपाल कृष्ण गोखले
(1866-1915)

मोहनदास करमचंद गांधी
(1869-1948)

पं. मोतीलाल नेहरू
(1861-1931)

पं. जवाहर लाल नेहरू
(1889-1964)

डॉ. सर मुहम्मद इक़बाल
(1876-1938)

हिज़ हाइनेस आग़ा ख़ाँ तृतीय सुल्तान सर मुहम्मद शाह
(1877-1965)

सरदार भगत सिंह
(1907-1931)

डॉ. भीमराव रामजी राव अम्बेडकर
(1891-1956)

मुहम्मद करीम छागला
(1900-1981)

चौधरी खलीक़ुज़्ज़मा
(1889-1973)

हुसेन शहीद सुहरावर्दी
(1892-1963)

नवाबजादा लियाक़त अली ख़ाँ
(1895-1951)

वल्लभभाई पटेल मार्ग, मुम्बई स्थित ऐतिहासिक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के परिसर में
सन् 1919 में निर्मित (दि पीपुल्स जिन्ना हाल) दायीं ओर लेखक मित्र गुलाम रसूल सूफ़ी (बायीं ओर) के साथ

मुहम्मद अली जिन्ना और रत्ती जिन्ना का मालाबार हिल (मुम्बई) स्थित आवास (सन् 1920)

छोटी बहन फ़ातिमा जिन्ना, मुहम्मद अली जिन्ना और बेटी दीना

12 सितम्बर 1948, कराची, जिन्ना की मजार पर एकदम बायें
बेटी दीना वाडिया और दायें बहन फ़ातिमा जिन्ना

महात्मा गांधी रोड, गुन्टूर (आंध्र प्रदेश) स्थित जिन्ना टावर

के प्रति वह पहले ही सजग थे। बम्बई में आकर सफ़ाई पर उनका ज़ोर कुछ इस हद तक पहुँच गया था कि कहते हैं कि अक्सर वह लोगों से हाथ मिलाने के बाद अपने हाथ साबुन से धोना ज़रूरी समझते थे। जानकार लोगों के मुताबिक़ उनकी यह आदत अन्त तक बरक़रार रही।

बम्बई में प्रारम्भिक तीन-साढ़े तीन साल संघर्ष और तंगी के रहे। पिता का व्यवसाय कराची में डूब चुका था। उनका दुर्ललित युवकोचित स्वाभिमान, स्नेहशीला बुआ मानबाई और प्रभावशाली फूफा पीरभाई से भी किसी प्रकार की सहायता लेने की अनुमति नहीं दे रहा था। पर इन दोनों के बम्बई में होने का एक लाभ तो था ही। उनके ज़रिए जिन्ना का सामाजिक दायरा बढ़ने लगा। सन् 1900 में उन्हें थोड़ा-बहुत काम मिलने लगा था। अपने व्यक्तित्व, व्यवहार और कुशाग्र मेधा से वह मिलनेवालों को प्रभावित करने लगे थे। इसी बीच उनका परिचय तत्कालीन बम्बई प्रान्त के कार्यकारी एडवोकेट जनरल जॉन मेनेस्वर्थ मैकफर्सन से हुआ। यह युवा बैरिस्टर पहला हिन्दुस्तानी था, जिसे मैकफर्सन ने अपने कार्यालय में कार्य करने के लिए आमन्त्रित किया था। जिन्ना की अन्तरंग मित्र सरोजिनी नायडू ने लिखा है कि संघर्ष के दिनों में मैकफर्सन से सम्पर्क उनके लिए आशा का एक आलोक-स्तम्भ साबित हुआ। मैकफर्सन के दफ़्तर में ही उन्हें जानकारी मिली कि बम्बई प्रेसीडेंसी में एक मजिस्ट्रेट का पद रिक्त है। बम्बई प्रान्त के गवर्नर की कार्यकारिणी के क़ानून-विषयक सदस्य सर चार्ल्स आंजिवैंट से जब वह इस पद के लिए मिले तो उनके सुदर्शन और सुसंस्कृत व्यक्तित्व के साथ उनकी वाक्पटुता और बौद्धिक प्रखरता ने उनका काम काफ़ी आसान कर दिया। इस तरुण बैरिस्टर से प्रभावित हो सर चार्ल्स ने उक्त पद पर उनकी अस्थायी नियुक्ति का तुरन्त आदेश कर दिया। छः माह के अन्दर ही उन्होंने उस पद पर जिस योग्यता का परिचय दिया उससे प्रभावित हो सर चार्ल्स ने उन्हें इस पर स्थायी रूप से नियुक्ति का प्रस्ताव दिया। उस पद पर उस समय वेतन 1500 रुपए प्रतिमाह था। सन् 1900-01 में यह राशि बहुत बड़ी थी।

जिन्ना का आत्मविश्वास अब लगातार बढ़ता जा रहा था। उन्हें लन्दन में क़ानूनविदों और वकीलों के सामाजिक और राजनीतिक महत्त्व की झलक मिल चुकी थी। बम्बई में भी सर फ़िरोज़ शाह मेहता, दादाभाई नौरोज़ी, महादेव गोविन्द रानाडे और बदरुद्दीन तैयब जी जैसे क़ानूनी पेशे से जुड़े महानुभावों के सामाजिक-राजनीतिक महत्त्व से वह न केवल दिनोंदिन अच्छी तरह परिचित हो चले थे, अपितु व्यापक राष्ट्रीय जीवन में इस पेशे से जुड़े कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व, बम्बई समेत कलकत्ता, लाहौर, पेशावर, इलाहाबाद, लखनऊ, मद्रास, पुणे, अहमदाबाद और कराची जैसे शहरों में धीरे-धीरे जो हलचल पैदा कर रहे थे, उसका स्पन्दन तरुण और प्रबुद्ध जिन्ना अपने अन्दर भी कहीं बहुत गहरे अनुभव करने लगे थे। उनमें जहाँ एक ओर क़ानूनी पेशे में शिखर पर पहुँचने की महत्वाकांक्षा बलवती होती जा रही थी, वहीं दूसरी ओर देश के व्यापक राजनीतिक जीवन में भूमिका निभाने की ललक भी सुगबुगाने लगी थी। इसके लिए मजिस्ट्रेट की कुर्सी निश्चय ही सही जगह नहीं थी। सर चार्ल्स इस सुयोग्य मजिस्ट्रेट को खोना नहीं चाह रहे थे। अतः जब उन्होंने जिन्ना को इस पद और उससे जुड़े वेतन का महत्त्व समझाया

तो उन्हें आत्मविश्वास-भरा जवाब मिला—"सर, मैं जल्दी ही पन्द्रह सौ रुपए रोज़ कमाने लगूँगा।"

प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के स्थायी पद का प्रस्ताव नामंज़ूर करने के बाद कुछ दिन जिन्ना ने सर फ़िरोज़शाह मेहता के चेम्बर में काम किया। इसी बीच वह बम्बई के ओरियंटल क्लब के सदस्य बन गए थे। यद्यपि संघर्ष और तंगी के प्रारम्भिक दिन लगभग बीत गए थे पर हाथ अभी पूरी तरह खुला नहीं था। इस सिलसिले में एक दिलचस्प घटना उल्लेखनीय है। ओरियंटल क्लब में नियम था कि बिलियर्ड के सौ प्वाइंट के खेल में यदि क्लब का कोई सदस्य दूसरे सदस्य से हारता था तो उसे बारह आने देने पड़ते थे। तीस साल के जिन्ना ने सन् 1906 में क्लब की सुझाव-पुस्तिका में इस नियम में परिवर्तन का सुझाव दिया था। उनके अनुसार यदि कोई सदस्य दूसरे सदस्य की जगह क्लब के कर्मचारी क्लब-मार्कर से खेलते हुए हारता है तो उसे बारह आने की जगह छः आने ही अदा करने की व्यवस्था होनी चाहिए। छः आने की बचत भी उन्हें उस समय महत्त्वपूर्ण लगी होगी। प्रारम्भिक वर्षों में प्रैक्टिस बहुत अच्छी न होने के कारण वह क्लब तीसरे पहर ही पहुँच जाते थे। उस समय पूरे सदस्य नहीं पहुँचे होते थे। इसलिए वह क्लब-मार्कर के साथ ही बिलियर्ड के खेल का शौक पूरा करते थे। ताश और जुए जैसे किसी चांस गेम से उन्हें नफ़रत सी थी। हाँ, शतरंज उनका पसन्दीदा खेल था। उसकी बारीकियाँ वह अच्छी तरह समझते थे। शह और मात की अपनी चाल वह बड़ी सूझबूझ के साथ चलते थे। इस खेल की सूक्ष्म समझ, आगे राजनीतिक जीवन में अपने विरोधियों से निपटने में उनके लिए निहायत कारगर साबित हुई। बिलियर्ड के खेल में मार्कर से हारने पर छः आने अदा करने के उनके सुझाव पर रत्ती (उनकी पत्नी) और कानजी द्वारकादास (उनके मित्र) आगे चलकर अक्सर उनका मज़ाक़ उड़ाते थे। लगभग साल भर सर फ़िरोज़शाह मेहता के चैम्बर में काम कर जिन्ना ने बम्बई हाईकोर्ट के परिसर में ही अपना अच्छा-ख़ासा चैम्बर बना लिया था। लोकमान्य तिलक का आवास सरदारगृह और जिन्ना के चैम्बर एक अर्से तक बम्बई की राजनीतिक हलचलों के केन्द्र रहे।

उनके पिता जिण्णाभाई पुंजा का व्यवसाय अब कराची में पूरी तरह डूब चुका था। अपने बाक़ी बच्चों के साथ वह भी बम्बई आ गए थे। यहाँ वह एक खोजा-बहुल इलाक़े में किराए के मकान में रहने लगे थे। अपने पिता और भाई-बहनों से उनके बहुत अच्छे आत्मीय सम्बन्ध के संकेत नहीं मिलते। भाई-बहनों में (शीरीन के अलावा) सबसे छोटी बहन फ़ातिमा के लिए ही उनके मन में गहरा स्नेह-भाव था। अतः पिता के बम्बई आने के पहले ही उसे यहाँ लाकर उन्होंने मिशनरी के एक अच्छे कान्वेंट स्कूल में भर्ती करा दिया था। उस समय के रूढ़िग्रस्त खोजा समुदाय में इसे अच्छा नहीं माना गया। पर जिन्ना ने इसकी परवाह नहीं की। वह घोड़े पर चढ़कर छुट्टी के दिन फ़ातिमा से मिलने नियम से उसके होस्टल जाया करते थे। बीसवीं सदी की शुरुआत में एक मुसलमान लड़की को एक मिशनरी स्कूल के होस्टल में रहकर पढ़ाई करने के कारण कितनी आलोचना, फब्तियाँ और तंज़ का सामना करना पड़ा होगा इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। ऐसी विषम स्थितियों में जिन्ना अपनी प्यारी छोटी बहन के लिए

शक्ति-स्तम्भ सिद्ध हुए। आजीवन अविवाहिता फ़ातिमा ने भी मृत्युपर्यन्त अपने इस महत्त्वाकांक्षी प्यारे भाई का साथ दिया। वह छाया की तरह उनसे जुड़ी रहीं। दोनों अपने दोहरे एकाकीपन के दौरान एक दूसरे के लिए शक्ति का अविरल स्रोत बने रहे।

जिन्ना ने लन्दन में पढ़ाई के दौरान क़ानून के पेशे से जुड़े लोगों का सुसभ्य जीवन, कुलीन रहन-सहन, पेशे के प्रति ईमानदारी, बौद्धिक प्रखरता, उदार जीवन-दृष्टि और श्रेष्ठता के उच्च से उच्चतर मानदंड स्थापित करने के लिए स्वस्थ स्पर्धा-भाव देखा और अनुभव किया था। वह आजीवन इन मूल्यों के प्रति समर्पित रहे। जहाँ एक ओर इंग्लैंड के अभिजात वर्ग के रहन-सहन, वेष-भूषा और शिष्टाचार को उन्होंने अपने वकालत के पेशे से जुड़ने के साथ ही पूरी तरह अपना लिया था, वहीं दूसरी ओर उन्हें अपने पेशे की मर्यादा और अपने आत्मसम्मान का सदैव ध्यान रहा। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में बम्बई के हलचल भरे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में एक से एक बढ़कर हस्तियाँ सक्रिय थीं। उनकी ख्याति सिर्फ़ हिन्दुस्तान में ही नहीं थी बल्कि उन्हें इंग्लैंड, यूरोप और अमेरिका में भी अपने काम और योग्यता के लिए जाना जाता था।

दादाभाई नौरोज़ी, फ़िरोज़शाह मेहता, लोकमान्य तिलक, गोखले, रानाडे, विट्ठलभाई पटेल और बदरुद्दीन तैयबजी जैसे दिग्गजों के बीच यदि तरुण जिन्ना अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज कराने में कामयाब रहे तो इसका श्रेय उनकी प्रतिभा, लगन, ईमानदारी, उदारता और बेलौस खरेपन को ही देना होगा। उनके बेलौसपन और ईमानदारी की कई घटनाओं का ज़िक्र उनके जीवनीकारों ने किया है। पहली घटना तब की है जब वह लगभग सत्ताईस वर्ष के थे। उस समय वह अपने पेशे में स्थापित होने के लिए संघर्षरत थे। ज़्यादा लोग उनके नाम और काम से अभी परिचित नहीं हुए थे। बात 1903 की है। बम्बई नगर निगम के अध्यक्ष उस समय एक स्कॉट सज्जन जेम्स मैकडोनाल्ड होते थे। वह उस समय बम्बई के नागरिक प्रशासन के शीर्षस्थ अधिकारी थे। बम्बई हाईकोर्ट में एक बहुत बड़े मामले की सुनवाई चल रही थी। हाईकोर्ट का हॉल इस हद तक वकीलों और दर्शकों से भरा हुआ था कि उसमें तिल-भर की गुंजाइश नहीं थी। हॉल में वकीलों के लिए एक अलग से इन्क्लोज़र था। सत्ताईस वर्षीय जिन्ना ने जब हॉल में प्रवेश किया तो उनकी निगाह वकीलों के लिए सुरक्षित जगह में एक कुर्सी पर बैठे मिस्टर मेकडोनाल्ड पर पड़ी। वह ख़ुद अपने लिए जगह की तलाश में थे। उन्होंने शिष्टाचार सहित मैकडोनाल्ड से कहा कि वह जगह हाईकोर्ट के वकीलों के लिए है। उनका मंतव्य था कि इसलिए उन्हें कुर्सी खाली कर देनी चाहिए। पर मैकडोनाल्ड ने उनकी बात अनसुनी कर दी, लिहाज़ा जिन्ना ने कोर्ट के एक कर्मचारी से कुर्सी खाली कराने का आग्रह किया। सफ़ेद चमड़ी के एक अतिविशिष्ट अधिकारी से इस सम्बन्ध में कुछ कहने की हिम्मत उस बेचारे कर्मचारी को कैसे पड़ती ! पर जब जिन्ना ने इस सम्बन्ध में जज से शिकायत की धमकी दी तो कर्मचारी को अन्ततः मिस्टर मैकडोनाल्ड से जगह छोड़ने के लिए आग्रह करना ही पड़ा। मिस्टर मैकडोनाल्ड ग़ज़ब के शख़्स साबित हुए। नाराज़गी का इज़हार किए बिना उन्होंने उस ज़िद्दी तरुण तेजस्वी वकील के लिए कुर्सी छोड़ दी। जिन्ना के

बैठ जाने के बाद पास ही आम दर्शकों में खड़े मिस्टर मैकडोनाल्ड ने उनका नाम पता कर लिया। तरुण जिन्ना की तेजस्विता से वह गहरे प्रभावित हुए। इस घटना के चन्द दिनों के अन्दर ही उन्होंने एक हज़ार रुपए प्रति मास के पारिश्रमिक पर जिन्ना को बम्बई नगर निगम का वकील नियुक्त कर दिया। सन् 1903 में यह काफ़ी बड़ी राशि थी।

जिन्ना के जीवन में पहला महत्त्वपूर्ण अवसर सन् 1907 में उस समय आया जब बम्बई के प्रबुद्ध नागरिकों के एक वर्ग ने उन्हें बम्बई नगर महापालिका के चुनाव में बेईमानी से चुनाव जीतने के लिए यूरोपीय समुदाय के एक प्रभावशाली गुट के विरुद्ध उच्च न्यायालय में याचिका दाख़िल करने के लिए अपना वकील नियुक्त किया। बात यह थी कि उक्त यूरोपीय गुट किसी भी हालत में उस समय बम्बई के सम्मानित बैरिस्टर और प्रतिष्ठित कांग्रेस नेता सर फ़िरोज़शाह मेहता को नगर महापालिका की काउंसिल से बाहर रखने के लिए कुछ भी करने पर आमादा था। उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता चुनाव में बेईमानी के ज़रिए प्राप्त हुई। बम्बई का पढ़ा-लिखा प्रबुद्ध तबका इससे आहत और क्षुब्ध था। फलस्वरूप उन्होंने जिन्ना के ज़रिए चुनाव को निरस्त करने के लिए बम्बई हाईकोर्ट के दरवाज़े पर दस्तक दी। जिन्ना उस समय सर फ़िरोज़शाह के चैम्बर में काम करते थे। आहत हिन्दुस्तानी आत्म-सम्मान की प्रतिष्ठा के लिए नगर के प्रमुख बुद्धिजीवियों द्वारा एक तीस वर्षीय तरुण जिन्ना का चयन वस्तुतः उनकी प्रतिभा और प्रतिबद्धता पर उत्कृष्टता की पहली मुहर थी। दरअसल, सर फ़िरोज़शाह मेहता ने स्वयं याचिका के लिए जिन्ना के नाम का सुझाव दिया था। यह मामला एक अर्से तक कुख्यात 'कॉकस केस' के नाम से चर्चित रहा। इस प्रकरण में वकील के रूप में जिन्ना बम्बई के अख़बारों की सुर्ख़ियों में छाए रहे। हालाँकि याचिका सफल नहीं हुई पर जिन्ना ने जिस योग्यता और तेजस्विता का परिचय उच्च न्यायालय में बहस के दौरान दिया, उससे उनकी गिनती नगर की महत्त्वपूर्ण हस्तियों में होने लगी।

प्रारम्भिक सफलता और उससे जुड़ी प्रतिष्ठा की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उन्हीं दिनों जिन्ना श्रीमती सरोजिनी नायडू के सम्पर्क में आए। वह जिन्ना से लगभग चार वर्ष छोटी थीं। उनसे जिन्ना की पहली भेंट कलकत्ता में 1906 में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के दौरान हुई थी। एक तरुण नवोदित राजनेता और सफल वकील की छवि के साथ जिन्ना के 'पुरुषोचित देशभक्ति दीप्त व्यक्तित्व' ने श्रीमती सरोजिनी नायडू को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। आगे चलकर स्वयं कांग्रेस की महत्त्वपूर्ण नेत्री और भारत-कोकिला के नाम से विख्यात कवयित्री श्रीमती नायडू जिन्ना के जीवन में पहली महिला थीं जिनमें तरुण जिन्ना ने सुरुचि, संवेदनशीलता और प्रखर बुद्धिमत्ता का आकर्षक समन्वय पाया था। इसके पहले वह मित्रों और परिचितों के परिवार की महिलाओं के ही सम्पर्क में आए थे जिनकी प्रशंसा वह सामाजिक शिष्टाचारवश करते रहने के अभ्यस्त थे। सरोजिनी नायडू के मन में जिन्ना के लिए बड़ी कोमल भावनाएँ थीं। उनकी तत्कालीन कविताओं में प्रेम की उदग्रता के पीछे कहीं न कहीं अपने तरुण मित्र के लिए उनकी अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों का सहज स्पन्दन भी था। उन दिनों

लिखी उनकी एक प्रेम कविता का एक अंश इस दृष्टि से दिलचस्प है—

दोपहर ज्वार के समय, प्रियवर
सबल-सुरक्षित मैं
कामना नहीं करती तुम्हारी
पर आधी रात की एकाकी घड़ी में
जब तारक-खचित नीरवता का
आनन्द सोया होता है
शान्त पहाड़ों और निःशब्द
सागर की सतह पर
मेरे मन में जगती है कामना
तुम्हारी आवाज़ की।

सरोजिनी नायडू के मन में अपने प्रति पनपते प्रेम के अंकुर के बरअक्स जिन्ना के मन में उनके आकर्षक व्यक्तित्व और गुणों के प्रति एक मैत्रीपूर्ण प्रशंसा भाव ही था जो प्रेम की सरहद नहीं छूता था। अतः यदि सरोजिनी नायडू के मन में जिन्ना के प्रति प्रेमभाव था तो वह निश्चय ही एकांगी था। उसकी बेल जिन्ना पर नहीं चढ़ पाई थी। पर इसके बावजूद दोनों एक दूसरे के प्रशंसक और मित्र एक लम्बे अर्से तक बने रहे। जिन्ना के साथ न केवल कांग्रेस और होमरूल लीग बल्कि मुस्लिम लीग के कई अधिवेशनों में श्रीमती नायडू ने भाग लिया था। सन् 1918 में सरोजिनी नायडू ने जिन्ना के लेखों और भाषणों का एक संकलन सम्पादित किया था जिसकी भूमिका में उन्होंने उनका जीवन परिचय देते हुए उन्हें हिन्दू-मुस्लिम एकता का अग्रदूत बताया था। उक्त लेख में जिन्ना के व्यक्तित्व का एक गहरा और विस्तृत विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया जो कई जगह काव्यात्मक हो उठा है। श्रीमती नायडू द्वारा जिन्ना के व्यक्तित्व का निम्नलिखित आकलन ख़ासा दिलचस्प है—

"ऐसी प्रकृति कभी नहीं रही होगी जिसके बाहरी गुण उसके अन्दर के मूल्यों का पूरी तरह विलोम प्रतीत होते हों। लम्बे और राजसी पर कृशता की हद तक दुबले, आदतन अलसाए और ऐशपसन्द मोहम्मद अली जिन्ना की दुर्बल काया उनकी ख़ास ज़िन्दादिली और सहनशीलता की खोल है। कुछ औपचारिक और कुछ नाज़ुकमिज़ाज. व्यवहार में थोड़े अलग-थलग और अपने में बन्द उनकी स्वभावगत गैर-मिलनसारिता की अमुखर-अहंमन्यता, उन्हें जाननेवालों के अनुसार, उनकी सहज तथा उदग्र मनुष्यता, स्त्रियों की सी उनकी कोमल तथा सवेदनशील अन्तर्वृत्ति और बच्चों सी दिल जीत लेनेवाली उनकी मोद-भरी कौतुकप्रियता का आवरण है। इस सबसे ऊपर तर्कशील और व्यावहारिक जीवन के आकलन और उसकी स्वीकृति में निरावेग और विवेक-संगत उनकी सांसारिक बुद्धि की प्रकट स्वस्थचित्तता और शान्ति उनके शर्मीले पर शानदार आदर्शवाद को, जो उनके व्यक्तित्व का सार है, सफलतापूर्वक ढँक लेती है।"

एक कवि का गद्य होने के बावजूद उक्त पंक्तियाँ जिन्ना के व्यक्तित्व की कई गुत्थियाँ सुलझाने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। जिन्ना ने सबसे पहले सन् 1904 में

बम्बई के ओवल मैदान में आयोजित कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में भाग लिया था। इसकी अध्यक्षता सर हेनरी कॉटन ने की थी और सर फ़िरोज़शाह मेहता इसके स्वागताध्यक्ष थे। अध्यक्ष के रूप में सर कॉटन ने कहा था कि उनकी समझ से भारत की मुक्ति राजनीति के क्षेत्र में नहीं खोजी जा सकती। सर फ़िरोज़शाह मेहता ने उसका प्रतिवाद करते हुए कहा था कि इस देश की जनता की आशाएँ और आकांक्षाएँ बिना राजनीतिक अधिकार के कैसे साकार हो सकती हैं ? अंग्रेज़ नौकरशाही के ग़ैरज़िम्मेदाराना, सन्देहास्पद और सर्वथा गुप्त तरीकों से तो क़तई नहीं। इस अधिवेशन में जिन्ना की सक्रिय भागीदारी के संकेत नहीं मिलते। पर अट्ठाईस वर्षीय इस तरुण की क़ानूनी और संवैधानिक सूझ-बूझ और देश की उभरती राजनीतिक सोच और गतिविधियों की समझ को बम्बई के जागरूक हलकों में प्रशंसा ओर सम्मान के भाव से देखा जाने लगा था। इसका संकेत इसी से मिलता है कि इंग्लैंड की नवनिर्वाचित उदारवादी (लिबरल) सरकार से हिन्दुस्तान को राजनीतिक अधिकार देने के लिए विचार-विमर्श करने तथा इसके पक्ष में जनमत जगाने के लिए कांग्रेस ने अट्ठाईस वर्षीय युवा वकील जिन्ना को भी इंग्लैंड जाने के लिए चुना था। बम्बई के बाहर के कुछ प्रतिनिधियों ने इस अज्ञात कुलशील तरुण के समुद्री यात्रा के कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित ख़र्च पर आपत्ति उठाई थी। पर बाद में फ़िरोज़शाह मेहता के हस्तक्षेप से यह आपत्ति निरस्त हो गई थी। ज्ञातव्य है कि उक्त अधिवेशन में हिस्सा लेने के लिए इंग्लैंड से आए उदारवादी नेता सर विलियम वेडरबर्न का सुझाव था कि सर फ़िरोज़शाह मेहता स्वयं इंग्लैंड जा रहे गोखले और जिन्ना के प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व करें। पर किन्हीं अपरिहार्य कारणों से यह सम्भव नहीं हो सका। अतः गोखले और जिन्ना ही साथ-साथ इंग्लैंड गए। गोपालकृष्ण गोखले से, जिन्हें उनके आदर्श जीवन, विद्वत्ता, देशभक्ति और उदार सामाजिक-राजनीतिक विचारों के कारण महात्मा गोखले भी कहा जाता था, जिन्ना की पहली मुलाक़ात इसी अधिवेशन में हुई थी। जिन्ना उनसे गहरे प्रभावित हुए थे। वह उनकी 'सर्वेट्स ऑफ़ इंडिया सोसाइटी' के सक्रिय सदस्य बन गए थे। बाद में गोखले के देहावसान के बाद उनकी स्मृति में आयोजित व्याख्यान माला में जिन्ना ने उन्हें एक ऋषि कहा था। गोखले का कितना अप्रतिम प्रभाव उन पर पड़ा था, इसका प्रमाण है उनकी वह स्वीकारोक्ति, जिसमें उन्होंने अपने को 'मुस्लिम गोखले' के रूप में ढालने की कामना व्यक्त की थी।

तीस वर्ष की उम्र में जिन्ना अपने पेशे में स्थापित हो गए थे। उन्हें अब अपना आर्थिक आधार मज़बूत और सन्तोषप्रद लग रहा था। वह अब सक्रिय राजनीति को समय देने की स्थिति में थे। अतः सन् 1906 में वह कांग्रेस के नवनिर्वाचित अध्यक्ष इक्यासी वर्षीय दादाभाई नौरोज़ी के निजी सचिव के रूप में कलकत्ता में आयोजित ऐतिहासिक अधिवेशन में शामिल हुए। बंगाल के विभाजन से उपजे विवाद और आक्रोश की छाया में यह अधिवेशन हो रहा था। जिन्ना के लिए यह अधिवेशन एक उत्तेजक अनुभव था। जिस परिपक्व राजनेता से उन्होंने लगभग बारह वर्ष पूर्व इंग्लैंड के हाउस ऑफ़ कॉमन्स में अंग्रेज़ों की न्यायप्रियता और उदारता की प्रशस्ति सुनी थी, उसी से लगभग डेढ़ सौ साल के अंग्रेज़ी शासन के अमानवीय दमनकारी और अन्यायपूर्ण रवैये

की भर्त्सना और स्वराज की माँग सुनकर निश्चय ही उन्हें एक रोमांचक अनुभव हुआ होगा। यह रोमांच निश्चय ही कई गुना बढ़ गया होगा जब देश की राजनीति में पितामह-तुल्य समादृत दादाभाई का भाषण जिन्ना के कानों में अपने आदर्श गोखले की मधुर वाणी में गूँजा होगा। ज्ञातव्य है कि वृद्धावस्था और दुर्बलता के कारण दादाभाई द्वारा अध्यक्षीय भाषण पढ़ने में कठिनाई अनुभव किए जाने पर जिन्ना की सहायता से लिखा गया वह भाषण गोखले ने अपनी गुरु गम्भीर आवाज़ में पढ़ा था। जिन्ना ने अपना तीसवां जन्मदिन इस अधिवेशन के दौरान कांग्रेस के मंच से ही मनाया था।

जिन्ना ने कांग्रेस के सन् 1907 के सूरत-अधिवेशन में भी भाग लिया था जिसमें नरम और गरम दल के नाम से जाने गए कांग्रेस के दो वर्गों में गम्भीर विवाद हुआ था। सन् 1885 में सर ए.ओ. ह्यूम द्वारा हिन्दुस्तान से सहानुभूति रखनेवाले यहाँ स्थित अंग्रेजों, यूरोपियनों और पढ़े-लिखे समझदार भारतीयों के सहयोग से कांग्रेस की स्थापना के समय से ही इंग्लैंड और हिन्दुस्तान के अंग्रेज़ शासकों का एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण वर्ग उसे सन्देह की निगाह से देखता था। जैसे-जैसे यहाँ के प्रबुद्ध तबकों में हिन्दुस्तानियों की दिन-ब-दिन बढ़ती दयनीय स्थिति के प्रति संवेदना जगने लगी, वैसे-वैसे देश के शासन में सक्रिय भागीदारी के ज़रिए अपने बदक़िस्मत देशवासियों को दारुण दुर्दशा से उबारने की बेचैनी का बढ़ते जाना स्वाभाविक था। धीरे-धीरे कांग्रेस के अधिवेशन उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में नागरिक-अधिकार प्राप्ति के लिए सिर्फ़ विनयपूर्ण भाषा में प्रस्ताव पास करने और अर्जी देने के माध्यम नहीं रह गए थे। सन् 1900 में साम्राज्ञी विक्टोरिया के देहावसान के बाद इंग्लैंड में राजनीतिक उदारवादियों का एक सदाशयी वर्ग हिन्दुस्तान के नवोदित शिक्षित वर्ग की आशाओं-आकांक्षाओं को सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से देखने की कोशिश करने लगा था। कांग्रेस की स्थापना और उसके तुरन्त बाद जुड़ी पीढ़ी के परिपक्व नेता, जिनमें दादाभाई नौरोज़ी, फ़िरोज़शाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विजय राघवाचारी, रासबिहारी बोस, चितरंजन दास, महादेव गोविन्द रानाडे और गोपालकृष्ण गोखले प्रमुख थे, उससे अपेक्षाकृत बाद में जुड़े युवतर पीढ़ी के शीघ्र परिवर्तनकामी नेताओं की बेचैनी और तेवर के बरअक्स अपर्याप्त सिद्ध हो रहे थे। पंजाब के लाला लाजपत राय, बम्बई प्रेसीडेंसी के बाल गंगाधर तिलक और कलकत्ता के विपिनचन्द्र पाल की अपेक्षाकृत तरुण तेजस्वी त्रयी पुरानी पीढ़ी के नेतृत्व को चुनौती देने के लिए तैयार हो चुकी थी। अतः सन् 1907 के सूरत-अधिवेशन में दोनों पक्षों ने अपने-अपने बल का प्रदर्शन किया। मंच पर बहस-मुबाहिसे के दौरान किसी ने चप्पल फेंक दी थी जो फ़िरोज़शाह मेहता और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी दोनों को लगी थी। इस अधिवेशन में जिन्ना की सक्रिय भागीदारी का संकेत नहीं मिलता। पर इतना तय है कि उनकी सहानुभूति उसी पक्ष की ओर थी, जिधर गोखले थे। कांग्रेस के दो महत्त्वपूर्ण समादृत वयोवृद्ध नेताओं के प्रति यह अत्यन्त असभ्य व्यवहार जिन्ना की शालीन प्रकृति को निश्चय ही नागवार गुज़रा था।

2

कांग्रेस-विभाजन से प्रथम विश्व-युद्ध के अन्त तक

सन् 1908 से सन् 1918 तक

सूरत-अधिवेशन के दौरान जो कटुता कांग्रेस की पुरानी पीढ़ी (नरम दल) और नई पीढ़ी (गरम दल) के नेताओं के बीच पैदा हो गई थी, वह लगातार बढ़ती गई। तिलक ने यद्यपि खेद व्यक्त करते हुए दोनों वर्गों के नेताओं के बीच बढ़ती खाई को पाटने की कोशिश की थी किन्तु सर फ़िरोज़शाह मेहता की ज़िद के कारण आपसी मिलाप सम्भव नहीं हो सका। फलस्वरूप अप्रैल, 1908 में कांग्रेस के अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा गरम दल के नेताओं और उनके अनुयायियों को कांग्रेस से निकाल दिया गया। जिन्ना इस अधिवेशन में शामिल हुए थे। कांग्रेस का नरम दल अंग्रेज़ी साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतन्त्रता और स्वराज संवैधानिक मार्ग से प्राप्त करना चाहता था। कांग्रेस के इस दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन को टालने की कोशिश गोखले ने भी की थी। नरम दल के नेताओं में गोखले इस विभाजन से बहुत दुःखी थे। निश्चय ही जिन्ना भी जोकि नरम दल के नेताओं के संवैधानिक मार्ग से स्वाधीनता और स्वशासन के अधिकार की प्राप्ति के पक्षधर थे, अपने आदर्श गोखले की तरह इस विभाजन मे आहत थे। कई राजनीतिक मुद्दों पर तिलक से गम्भीर असहमति के बावजूद जिन्ना उनकी उद्दाम राष्ट्रीयता के प्रशंसक थे। अतः कांग्रेस से निकाले जाने के बाद जब अपने ओजस्वी पत्र 'केसरी' में सरकार-विरोधी उग्र लेखों के कारण तिलक को राजद्रोह के अभियोग में गिरफ़्तार कर लिया गया और उनकी जमानत नामंज़ूर कर दी गई तो जिन्ना ने उनके वकील के रूप में उनकी ससम्मान रिहाई के लिए मुम्बई हाईकोर्ट के समक्ष ज़ोरदार वकालत की। यद्यपि जिन्ना अपने प्रयास में सफल नहीं हुए पर उनकी तेजस्विता और वाग्मिता की धाक एक बार फिर जम गई। लगभग आठ साल बाद सन् 1916 में जब अंग्रेज़ सरकार ने एक बार फिर राजद्रोह के अभियोग में तिलक को गिरफ़्तार कर लिया था तो जिन्ना ने इस बार भी उनके वकील के रूप में अपनी बहुमूल्य सेवाएँ प्रदान की थीं। अपनी क़ानूनी दलीलों और ओजस्वी बहस से इस बार जिन्ना तिलक को राजद्रोह के अभियोग से बरी कराकर उनकी रिहाई में कामयाब रहे थे।

हिन्दुस्तान का शासन सन् 1908 तक अंग्रेज वॉयसराय द्वारा छः सदस्योंवाली एक

कार्यकारी परिषद् (एक्ज़ीक्युटिव काउंसिल) की मदद से चलाया जा रहा था। इस वर्ष हिन्दुस्तान को 1857 के बाद इंग्लैंड के राजमुकुट के अधीन ले आने के पचास वर्ष पूरे हुए थे। सम्राट एडवर्ड सप्तम् ने इस अवसर पर दिए गए अपने भाषण में प्रशासन को बेहतर और अपेक्षाकृत और अधिक कार्यकुशल और उत्तरदायी बनाने के लिए यहाँ के लोगों से नियमित सम्पर्क के अवसर की ज़रूरत पर ख़ास ज़ोर दिया था। इसके फलस्वरूप एक विशेष विधेयक द्वारा छः सदस्यीय एक्ज़ीक्यूटिव काउंसिल को 1909 में साठ सदस्यीय इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल में बदल दिया गया था। इसके पैंतीस सदस्य वॉयसराय द्वारा मनोनीत होने थे। शेष पच्चीस सदस्यों को चुनकर आना था। इस नई काउंसिल में छः सीटें मुसलमान सदस्यों के लिए सुरक्षित थीं। इनमें से एक सीट बम्बई में थी। बम्बई की सीट के लिए यहाँ सर उपाधि से अलंकृत दो महत्त्वपूर्ण मुसलमान सज्जनों के बीच लम्बे बहस-मुबाहिसे के बाद भी असहमति बरकरार रह गई थी। ऐसी स्थिति में अन्ततः दोनों अपने-अपने नाम की जगह तरुण-तेजस्वी जिन्ना के नाम पर एकमत हो गए थे। इस तरह तैंतीस वर्षीय जिन्ना इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल में बम्बई के मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए। अब तक के धर्मनिरपेक्ष सार्वजनिक जीवन में पहली बार उनकी मुस्लिम पहचान रेखांकित हुई थी। बम्बई के अन्य दो सदस्य गोखले और यहाँ के सार्वजनिक जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले एक बहुप्रतिष्ठित यहूदी सज्जन सर डेविड ससून भी थे। जिन्ना नवनिर्मित काउंसिल के सबसे कम उम्र के सदस्य थे। गोखले जहाँ गुरुवत उनके आदर्श थे, वहीं सर ससून के जनहितकारी कार्यों से वे गहरे प्रभावित थे। अतः काउंसिल में इन दो महानुभावों के साथ बम्बई का प्रतिनिधित्व उनके लिए बड़े सम्मान की बात थी।

काउंसिल में उनका पहला भाषण दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों की दारुण स्थिति को लेकर था। अपने तर्कसंगत प्रभावशाली भाषण में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद के नशे में चूर गोरी सरकार द्वारा वहाँ के बेबस हिन्दुस्तानियों के प्रति किए जा रहे क्रूर और कठोर व्यवहार को रेखांकित करते हुए कहा था कि इससे देश के हर वर्ग में चरम सीमा तक रोष और आतंक व्याप्त है। क्रूर शब्द के प्रयोग पर वॉयसराय लॉर्ड मिंटो ने आपत्ति जताते हुए कहा था कि अंग्रेज़ साम्राज्य के एक मित्र हिस्से के सम्बन्ध में इसका प्रयोग सदन के संविधान के विरुद्ध था। इसलिए सम्मानित सदस्य (जिन्ना) को अपनी भाषा मर्यादित रखनी चाहिए। जिन्ना ने इसका तुरन्त उत्तर देते हुए कहा था कि दरअसल, वह इससे भी कठोर शब्द का प्रयोग करना चाहते थे, किन्तु संविधान की मर्यादा के प्रति अपनी पूरी सजगता के कारण ही उन्होंने केवल 'क्रूर' शब्द का ही प्रयोग किया था। दूसरे दिन जिन्ना का यह भाषण अख़बारों की सुर्खियों में था। यह विचित्र संयोग था कि जिस समय जिन्ना दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की दुर्नियति के विरुद्ध उपजे देश के आक्रोश को एक धारदार वाणी प्रदान कर रहे थे, उसी समय महात्मा गांधी अपने सत्याग्रह के अस्त्र से मनुष्यता के इतिहास का पहला अहिंसक युद्ध लड़ रहे थे।

जिन्ना ने काउंसिल में दूसरा महत्त्वपूर्ण भाषण अप्रैल, 1912 में गोखले द्वारा पेश प्रारम्भिक शिक्षा विधेयक (एलिमेंट्री एजुकेशन बिल) का ज़ोरदार समर्थन करते हुए दिया। अशिक्षा के अन्धकार से चतुर्दिक घिरे निरक्षरता के महासागर को शिक्षा के प्रकाश से आलोकित करने की माँग करते हुए उन्होंने पैसे की कमी का गेना रोने से सरकार को बाज आने के लिए कहा। उनके अनुसार इसके लिए अंग्रेज़ी साम्राज्य के खजाने से तीन करोड़ रुपए की व्यवस्था के रास्ते में आनेवाली कोई भी कठिनाई ऐसी नहीं थी जिसका हल न निकाला जा सके। तीस करोड़ की जनसंख्या के लिए यह कोई बहुत बड़ी राशि नहीं थी। साधन जुटाने के लिए यदि और कोई रास्ता नहीं निकलता तो इस काम के लिए सरकार को थोड़ा और टैक्स लगाने जैसे अलोकप्रिय क़दम उठाने से भी नहीं हिचकना चाहिए। जनता के हित में ऐसे अलोकप्रिय क़दम से बचने की कोशिश दरअसल सरकार का अपने कर्तव्य से मुख मोड़ना होगा। उन्होंने अपने भाषण में जोड़ा था कि शिक्षा का महत्त्व हिन्दुस्तानियों ने अंग्रेज़ों से ही सीखा था। उनके अनुसार शिक्षित हिन्दुस्तानी से बेहतर दोस्त अंग्रेज़ों को और कहीं नहीं मिल सकता था। अपनी प्रजा को शिक्षा देना हर सभ्य सरकार की ज़िम्मेदारी है। इसके रास्ते में आनेवाली अलोकप्रियता के ख़तरे का उसे हिम्मत से सामना करना चाहिए। निश्चय ही गोखले के प्रारम्भिक शिक्षा सम्बन्धी विधेयक को सबसे मुखर और ज़ोरदार समर्थन काउंसिल में जिन्ना से ही मिला था।

काउंसिल की सदस्यता के पहले दौर में जिन्ना को सबसे महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक सफलता मुस्लिम वक़्फ़ सम्बन्धी अपने व्यक्तिगत विधेयक को पास कराने के रूप में मिली थी। राजसत्ता छिन जाने के बाद हिन्दुस्तानी मुसलमानों के कुलीन और समृद्ध वर्ग के दुर्दिन एक अर्से पहले से शुरू हो गए थे। व्यवसाय-व्यापार में कोई ख़ास रुचि न होने के कारण और आधुनिक शिक्षा के अभाव में मुसलमानों के सामन्ती समाज में दिन-ब-दिन बढ़ती विलासितापूर्ण आदतों का भी इसमें कम योगदान नहीं था। उनकी इन पतनशील प्रवृत्तियों से नई पीढ़ी का भविष्य लगातार अन्धकारमय होता जा रहा था। जो भी जायदाद बची हुई थी उसका लाभ आगे की पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखने के लिए एकमात्र रास्ता था इस्लामी क़ानून में स्वीकृत वक़्फ़ की व्यवस्था को अंग्रेज़ी क़ानून के तहत मान्यता दिलाना। बची हुई जायदाद को बिखरने और बर्बाद होने से बचाने के लिए उसे एक पारिवारिक न्यास (ट्रस्ट) के अन्तर्गत रखकर उसका लाभ आनेवाली पीढ़ी के भरण-पोषण और शिक्षा आदि के लिए सुरक्षित रखना ऐसा एकमात्र विकल्प था जिससे मुसलमानों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में तेज़ी से आ रही गिरावट को रोका जा सकता था। वक़्फ़ को अंग्रेज़ी विधि-व्यवस्था के अन्तर्गत क़ानूनी मान्यता के लिए सबसे पहली कोशिश सर सैयद अहमद ख़ाँ ने की थी। पर वह उसमें नाकामयाब रहे। इस पृष्ठभूमि में जिन्ना ने जिस तार्किकता, संसदीय कौशल और सूझबूझ से मुस्लिम वक़्फ़ सम्बन्धी अपने निजी विधेयक को काउंसिल में पास कराया वह अपने आप में एक अनोखी मिसाल है। मार्च 1911 में जिन्ना ने अपने वक़्फ़ सम्बन्धी निजी विधेयक

को संसद के पटल पर विचारार्थ रखा और मार्च 1913 में उसे वॉयसराय की औपचारिक संवैधानिक स्वीकृति के साथ अंग्रेज़ी क़ानून के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त हुई। देश के संसदीय इतिहास में पहली बार कोई व्यक्तिगत विधेयक क़ानून की शक्ल अख़्तियार कर सका था। जिन्ना इस तरह सर सैयद का एक अधूरा सपना साकार करने में कामयाब हुए थे। सरोजिनी नायडू ने इस विधेयक को पास कराने में प्रदर्शित जिन्ना की बौद्धिक प्रखरता और संसदीय कौशल की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। जिन्ना की इस अप्रतिम सफलता का दिलचस्प नतीज़ा यह रहा कि उनके पाश्चात्य रहन-सहन, खान-पान और धर्मनिरपेक्ष जीवन-शैली से बिदकनेवाले पुराने और दकियानूसी खयालोंवाले मुसलमान तबके में भी उनकी योग्यता की धाक जम गई। पहली बार हिन्दुस्तान का सारा मुसलमान समाज उन्हें सम्मान और कृतज्ञता के भाव से अभिभूत एक निहाल दृष्टि से देख रहा था।

सन् 1912 में संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के प्रान्तीय कार्उसिल के चुनाव के तुरन्त बाद नवगठित स्थानीय स्वशासन (लोकल सेल्फ गवर्नमेंट) की इकाइयों के सदस्यों के प्रस्तावित चुनाव में मुसलमानों के लिए पृथक सीटों की माँग साम्प्रदायिक आधार पर शुरू हो गई थी। सन् 1913 में आगरा में आयोजित मुस्लिम लीग के अधिवेशन में इस सम्बन्ध में एक विस्तृत प्रस्ताव रखा गया। पटना के क़ानूनविद् मौलाना मज़हरूल हक़ और बम्बई के जिन्ना ने यह प्रस्ताव पास न कराने के लिए लीग के सदस्यों को मनाने की ज़ोरदार कोशिश की, किन्तु वह इसमें कामयाब नहीं हो सके। सैयद रज़ा अली नामक एक प्रभावशाली नेता इस प्रस्ताव के प्रबल समर्थक थे। इस प्रस्ताव के पास होने के साथ ही लीग की अलगाववादी साम्प्रदायिक राजनीति की असली शुरुआत होती है। केन्द्रीय कार्उसिल में जिन्ना यद्यपि स्वयं मुसलमान प्रतिनिधि के रूप में शामिल थे, किन्तु स्थानीय शासन मे धर्म का नाम लेकर साम्प्रदायिक आधार पर सीटों के विभाजन को वह एक धर्मनिरपेक्ष आधुनिक राष्ट्र के विकास की माँग में बहुत बड़ी बाधा मानते थे। इस आशय का भाषण वह गोखले के साथ सन् 1910 में पहले भी इलाहाबाद में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में दे चुके थे।

मार्च, 1913 की अपनी विशिष्ट सफलता के प्रभा-मंडल में मंडित जिन्ना और उनके गुरु-तुल्य आदर्श गोखले ने अवकाश के कुछ निर्बाध क्षण साथ-साथ बिताने का निर्णय लिया। प्रौढ़ावस्था की ओर अग्रसर जिन्ना ने पहली बार किसी के साथ भावनात्मक सम्बन्ध की आत्मीय ऊष्मा का अनुभव किया था। छत्तीस वर्षीय जिन्ना और सैंतालीस वर्षीय गोखले अप्रैल, 1913 में पानी के जहाज़ से इंग्लैंड के लिए रवाना हुए। अप्रैल और सितम्बर के बीच का समय उन्होने साथ-साथ बिताया। वे सम्भवतः साथ-साथ यूरोप भी गए। लगभग छः माह साथ-साथ बिताए उनके आत्मीय क्षणों के दौरान विचार-विनिमय का कोई रिकार्ड उपलब्ध नहीं है। सरोजिनी नायडू ने अपनी काव्यात्मक भाषा में लिखा है कि अरब के आकाश में दमकते सितारों और मिस्र की समुद्री लहरों के पास निश्चय ही देश को समर्पित उनकी सेवा के पारस्परिक सपनों, आशाओं और

आकांक्षाओं का हिसाब होगा।

जब जिन्ना स्वयं इंग्लैंड में विद्यार्थी थे, उस समय अधिकतर हिन्दुस्तान के सम्पन्न और कुलीन परिवारों की सन्तानें ही वहाँ पढ़ने जाती थीं। लगभग दो दशक बाद बड़ी संख्या मे विभिन्न जातियों और निचले आर्थिक और सामाजिक स्तर के युवा भी पढ़ाई के लिए वहाँ पहुँचने लगे थे। उस समय अछूत और पिछड़े समझे जानेवाले डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे कई तेजस्वी, महत्त्वाकांक्षी और परिवर्तनकामी तरुण भी वहाँ पहुँच रहे थे। जातिगत दम्भ, सामाजिक-मानसिक संकीर्णता और ऊँच-नीच के त्रासद भेदभाव से ग्रस्त हिन्दुस्तानी युवकों के बीच आपसी समझ और सौमनस्य के अभाव ने गोखले और जिन्ना को लन्दन में गहरी चिन्ता में डाल दिया था। 28 जून, 1913 को लन्दन के इंडियन एसोसिएशन के तत्वावधान में कैक्सटन हॉल में आयोजित हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की एक विशाल सभा को सम्बोधित करते हुए जिन्ना ने जाति व्यवस्था को हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा अभिशाप बताया था। उन्होंने कहा था कि इसी के चलते हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों में आपसी मेलजोल और दोस्ताना सम्बन्धों का अभाव था। इसी वजह से वे एक दूसरे से अलग-थलग पड़े रहते थे और ब्रिटेन की कई सदियों के दौरान विकसित उदार और जीवन्त सभ्यता से सही शिक्षा ग्रहण करने में असफल साबित हो रहे थे। हिन्दुस्तान में कांग्रेस के नरम दल के नेता अब बड़ी तेज़ी से नेपथ्य में खिसकते जा रहे थे। उस पर बढ़ते गरम दल के वर्चस्व से उसके राजनीतिक तेवर और व्यवहार में यथास्थिति के विरुद्ध लगातार बढ़ते क्षोभ और उसे तोड़ने की विकलता हर संवेदनशील क्षेत्र में शिद्दत के साथ अनुभव की जा रही थी। देश के तरुण वर्ग में एक नई परिवर्तनकारी हरारत का संचार हो रहा था। अरविन्द घोष, श्यामजी कृष्ण वर्मा और लाला हरदयाल के साथ लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय और विपिन चन्द्रपाल तेज़ी से युवकों के आदर्श बनते जा रहे थे। इस नवस्फूर्त वातावरण में जो युवक इंग्लैंड पहुँच रहे थे उनका मिज़ाज निश्चय ही वहाँ पहुँचे अपने पूर्ववर्तियों से ख़ासा अलग था। आयरलैंड और दुनिया के दूसरे देशों के स्वतन्त्रता आन्दोलनों से उनका परिचय स्वाभाविक था। उनमें से अधिकांश राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रुचि ले रहे थे। उनकी भाषा अक्सर अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध आक्रामक, आक्रोशपूर्ण और तल्ख़ होती जा रही थी। शान्तिपूर्ण संवैधानिक रास्ते से स्वराज-प्राप्ति के पक्षधर जिन्ना ने हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों को पढ़ाई के दौरान राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने और उन्माद भरे बहस-मुबाहिसे और कठोर भाषा के प्रयोग से बचने की हिदायत देते हुए कहा था कि पढ़ाई उनकी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। उनके अनुसार पढ़ाई पूरी कर विद्यार्थियों को विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के प्रचारक और अग्रदूत के रूप में स्वदेश लौटना चाहिए। निश्चय ही यह भाषण उन्होंने अपने गुरु-मित्र गोखले की सहमति से ही दिया होगा। जिन्ना आजीवन पढ़ाई के दौरान विद्यार्थियों की राजनीति में सक्रिय भागीदारी के सख़्त ख़िलाफ़ रहे।

लन्दन में संयुक्त प्रान्त की मुस्लिम लीग के दो प्रमुख नेता सैयद वज़ीर अली और

मौलाना मोहम्मद अली जिन्ना से मिले। इन्होंने जिन्ना को मुस्लिम लीग के आगरा अधिवेशन में लिये गए निर्णयों और उसकी नीतियों को कांग्रेस के प्रगतिशील राष्ट्रीय उद्देश्यों से जोड़ने के प्रयासों और उसके महत्व का ध्यान दिलाया। लीग के सोच के दायरे को व्यापक बनाने में दोनों नेताओं ने जिन्ना के स्वयं के योगदान का सन्दर्भ भी दिया। उन्होंने कहा कि चूँकि दोनों दल अब एक ही राजनीतिक भाषा बोलने के लिए सहमत थे इसलिए उन्हें अब लीग की सदस्यता ग्रहण कर लेनी चाहिए। जिन्ना ने यह सुझाव मान लिया। पर अपनी प्रकृति के अनुसार एक राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण करने जैसे सामान्य कार्य-व्यापार को भी उन्होंने एक संजीदगी भरे औपचारिक आयोजन में बदल दिया। उन्होंने दोनों सज्जनों से अपने मौखिक शर्तनामे पर बाकायदा सहमति ली कि एक सदस्य के रूप में वह मुस्लिम लीग के प्रति अपनी निष्ठा को किसी भी हालत में बृहत्तर राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रति अपने समर्पण के मार्ग में बाधक सिद्ध नहीं होने देंगे। इस शर्त की दोनों नेताओं द्वारा सहर्ष स्वीकृति के बाद ही उन्होंने मुस्लिम लीग की सदस्यता ग्रहण की। इंग्लैंड से लौटकर जिन्ना ने अपनी जन्मभूमि कराची में दिसम्बर सन् 1913 में आयोजित कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में गोखले के साथ सक्रिय हिस्सा लिया। अधिवेशन में एक पस्ताव पास कर जिन्ना के उन प्रयासों की हार्दिक प्रशंसा की गई जिनके फलस्वरूप मुस्लिम लीग ने भी कांग्रेस की तरह अंग्रेज़ी साम्राज्य के अन्तर्गत हिन्दुस्तान के लिए स्वराज के आदर्श को अपने उद्देश्यों में शामिल कर लिया था। यह जिन्ना की उदार, धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रीय सोच का ही प्रभाव था कि मुस्लिम लीग ने अपने प्रस्ताव में ज़ोर देकर कहा कि देश का भविष्य उसके विभिन्न समुदायों के पारस्परिक सहयोग और सामंजस्यपूर्ण कार्यशैली पर निर्भर था।

कराची-अधिवेशन के दौरान जिन्ना ने अपने एक ख़ास प्रस्ताव के ज़रिए अंग्रेज़ी सरकार के सामने दो महत्त्वपूर्ण मांगें रखीं। पहली मांग इंग्लैंड की काउंसिल ऑफ़ इंडिया के पुनर्गठन से सम्बन्धित थी, जिसमें हिन्दुस्तानियों के समुचित प्रतिनिधित्व पर ज़ोर दिया गया था। दूसरी मांग थी कि हिन्दुस्तान के शासन के लिए जो राजकीय विभाग और अमला इंग्लैंड में कार्यरत था, उसके वेतन और ख़र्च का बोझ हिन्दुस्तान के बजट पर लादने के बजाय उसका प्रावधान वहाँ के गृह विभाग के लिए निर्धारित राशि में से किया जाए। हिन्दुस्तान के अत्यन्त सीमित और नितान्त अपर्याप्त आर्थिक संसाधनों पर उक्त ख़र्च का बोझ वह सर्वथा असंगत और अन्यायपूर्ण मानते थे। उनके प्रस्ताव को अधिवेशन में ज़ोरदार समर्थन प्राप्त हुआ। इस प्रस्ताव को अधिवेशन में कितनी गम्भीरता से लिया गया था, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि कांग्रेस ने अपने नवनिर्वाचित अध्यक्ष भूपेन्द्रनाथ बसु और लाला लाजपत राय के साथ उन्हें भी अप्रैल, 1914 में इंग्लैंड भेजने का निर्णय लिया। काउंसिल ऑफ़ इंडिया बिल इंग्लैंड की संसद के पटल पर रखा जा चुका था। उसका पहला वाचन 25 मई, 1914 को हाउस ऑफ़ लार्ड्स में निश्चित था। कांग्रेस का प्रतिनिधिमंडल थोड़ा पहले ही उस पर अपने दल के विचारों से वहाँ के सांसदों को अवगत कराने के उद्देश्य से पहुँच गया था।

जिन्ना वहाँ पूरी तैयारी के साथ पहुँचे थे। उन्होंने वहाँ एक होटल में हिन्दुस्तानी प्रतिनिधिमंडल के सम्मान में सांसदों द्वारा दी गई पार्टी में अपनी बात बड़े ही तर्कसंगत और प्रभावशाली ढंग से रखी। आयोजन की अध्यक्षता सर विलियम वेडरबर्न ने की थी। वह दो बार कांग्रेस के अध्यक्ष, बम्बई हाईकोर्ट के जज और बम्बई सरकार के मुख्य सचिव रह चुके थे। वह तरुण तेजस्वी और तार्किक जिन्ना की प्रतिभा से परिचित और प्रभावित थे। अधिकांश सांसदों का दृष्टिकोण हिन्दुस्तान की आशाओं-आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था। सर वेडरबर्न ने अपने भावुक और आत्मीय स्वागत भाषण में कहा कि "इंग्लैंड की उत्कट इच्छा आर्य जाति की दो महान शाखाओं के बीच सहानुभूतिपूर्ण और भ्रातृवत हार्दिक सम्बन्ध-निर्माण की है।" पर जिन्ना भावुकता के वेग में बहनेवाले व्यक्ति नहीं थे। वह जानते थे कि कब और कहाँ किस तरह की भाषा इस्तेमाल करनी चाहिए। उनका मानना था कि जिस तरह काउंसिल ऑफ़ इंडिया इस समय इंग्लैंड में गठित थी उससे वहाँ हिन्दुस्तानी मामलों के मन्त्री का निरंकुश होना अचरज की बात नहीं थी। वह हिन्दुस्तान में "राज कर चुके किसी भी मुग़ल से बड़ा मुग़ल था।" चूँकि काउंसिल सहित उसका वेतन और ख़र्च हिन्दुस्तान के बजट से आता था, वह इंग्लैंड की संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं था। उसको वहाँ की संसद के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए आवश्यक था कि उसके ख़र्च का प्रावधान इंग्लैंड की संसद द्वारा वहाँ के बजट से किया जाए। काउंसिल में हिन्दुस्तानियों का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए उन्होंने उसके पुनर्गठन का सुझाव देते हुए कहा कि उसके सदस्यों की संख्या छः की जगह कम-से-कम नौ कर देनी चाहिए। निर्धारित संख्या के तिहाई सदस्य हिन्दुस्तान के प्रान्तीय और इम्पीरियल काउंसिलों के हिन्दुस्तानी सदस्यों द्वारा चुने जाने चाहिए। दूसरा एक-तिहाई ऐसे निष्पक्ष, वस्तुनिष्ठ और सुयोग्य व्यक्तियों में से मनोनीत होने चाहिए जो हिन्दुस्तान के प्रशासन से सीधे सम्बन्ध न रखते हों। आख़िरी एक-तिहाई सदस्य एंग्लो-इंडियन समाज से लेने का उनका सुझाव था। पहले और तीसरे वर्ग के बीच टकराव और असहमति की स्थिति में बीच का एक-तिहाई वर्ग अपनी निष्पक्षता और वस्तुनिष्ठता से काउंसिल के कार्य-व्यापार को ज़रूरी सन्तुलन प्रदान करेगा, ऐसा उनका मानना था। जिस रूप में काउंसिल के गठन सम्बन्धी विधेयक को वहाँ की संसद के सामने रखा गया था, उसे जिन्ना घोर निराशाजनक मान रहे थे।

हिन्दुस्तानी प्रतिनिधिमंडल के प्रवक्ता के रूप में जिन्ना को ध्यानपूर्वक सुना गया था। इस बीच आयरलैंड में गृहयुद्ध की सी स्थिति पैदा हो गई थी और इंग्लैंड की संसद का ध्यान पूरी तरह उसकी तरफ़ केन्द्रित हो गया था। तीन जून, 1914 को जिन्ना ने 'दि टाइम्स' में लिखा था, "हिन्दुस्तान ब्रिटिश साम्राज्य का अकेला सदस्य था, जो किसी भी प्रकार के प्रतिनिधित्व से वंचित रखा गया था और वह संसार का एकमात्र ऐसा सुसभ्य देश था, जिसके पास अपनी कोई प्रतिनिधि सरकार की व्यवस्था नहीं थी।" बहरहाल, दूसरे वाचन के दौरान ही हाउस ऑफ़ लार्ड्स ने विधेयक को अस्वीकृत कर दिया था। उसकी अस्वीकृति के पीछे कई कारणों में से एक यह भी था कि वह

हिन्दुस्तान की ज़रूरत के अनुरूप नहीं था। अपने लन्दन प्रवास के दौरान जिन्ना ने होटल सेसिल में महात्मा गांधी के सम्मान में आयोजित एक सभा में भी हिस्सा लिया। यह दोनों के एक दूसरे के रूबरू होने का पहला अवसर था। दोनों के बीच अगर कोई विचार-विनिमय हुआ हो तो उसका कोई रिकार्ड नहीं मिलता। प्रतिनिधिमंडल ने वहाँ के राजनेताओं और सांसदों पर अपनी योग्यता और अपने देश के स्वशासन के प्रति अपनी अडिग प्रतिबद्धता की गहरी छाप छोड़ी थी। अब वह इंग्लैंड में भी हिन्दुस्तान के बड़े प्रभावशाली नेताओं में गिने जाने लगे थे।

प्रतिनिधिमंडल के साथ जिन्ना के हिन्दुस्तान लौटने के कुछ माह बाद ही सन् 1914 के प्रारम्भ में पहला विश्व महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। इस महायुद्ध के दौरान जिन्ना और गांधी के ब्रिटिश साम्राज्य और हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी सरकार के प्रति दृष्टिकोण पर विशद चर्चा 'गांधी और जिन्ना' अध्याय में की गई है। गांधी को जिन्ना ने निश्चय ही पहली वार अपने लन्दन प्रवास में ही उनके स्वागत-समारोह में देखा था। वह दक्षिण अफ्रीका में गांधी के कामों से अच्छी तरह परिचित थे। गांधी जब अन्तिम रूप से हिन्दुस्तान लौटे तो जनवरी 1915 को बम्बई की गुर्जर सभा द्वारा आयोजित उनके अभिवादन-समारोह की अध्यक्षता जिन्ना ने ही की थी। गांधी ने अपने सम्मान में दिए गए जिन्ना के अध्यक्षीय भाषण के उत्तर में इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की थी कि उनके अपने ही प्रान्त गुजरात का एक मुसलमान भाई न केवल गुजरातियों के इस संगठन से जुड़ा था, बल्कि वह उसके द्वारा आयोजित समारोह की अध्यक्षता भी कर रहा था। गांधी द्वारा जिन्ना को एक मुसलमान के रूप में इंगित किए जाने की बात को जिन्ना के सुप्रसिद्ध जीवनीकार स्टैनली वालपोर्ट ने (जो गांधी और नेहरू के भी जीवनीकार हैं) एक बतंगड़ का रूप देने की कोशिश की है। सविस्तार इस पर चर्चा 'आकलन' और 'जिन्ना और गांधी' शीर्षकों के अन्तर्गत की गई है। हिन्दू-मुस्लिम एकता और राष्ट्रीय एकजुटता के प्रति जिन्ना की अटूट प्रतिबद्धता का एक ज्वलन्त उदाहरण 13 फ़रवरी, 1915 को बम्बई की मुस्लिम छात्र-परिषद् को दिए गए उनके प्रेरक भाषण में मिलता है जिसमें उन्होंने अनुशासन और आत्मनिर्भरता के गुणों पर ज़ोर देते हुए छात्रों का आह्वान किया था कि वह जातिगत और साम्प्रदायिक भेदभाव भूलकर मुसलमानों और देश के दूसरे समुदायों के बीच सद्भावना, सहयोग और सामंजस्य का वातावरण पैदा करने के लिए अपनी पूरी ताक़त लगा दें। इसी बीच 19 फ़रवरी, 1915 को उनके गुरु-मित्र गोखले का देहान्त 49 वर्ष की आयु में हो गया। देश के राजनीतिक परिदृश्य से एकाएक गोखले का तिरोधान एक महान राष्ट्रीय क्षति के साथ जिन्ना के लिए एक बहुत बड़े व्यक्तिगत दुःख का कारण भी था। अब तक अपने अड़तीस वर्ष के जीवन में जिन्ना का इतना गहरा व्यक्तिगत लगाव किसी से भी नहीं रहा। अपने आगे के जीवन में भी जिन्ना न तो फिर कभी इतनी आत्मीयता से किसी के साथ जुड़े और न ही किसी दूसरे के प्रति फिर कभी उनके मन में उसकी योग्यता, बुद्धिमत्ता, राजनीतिक सूझबूझ और धर्मनिरपेक्ष उदार राष्ट्रीय दृष्टि को लेकर इतना गहरा सम्मान भाव पैदा

हुआ। निश्चय ही गोखले उनके पहले और अन्तिम राजनीतिक आदर्श थे। उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए जिन्ना ने उन्हें एक महान आधुनिक ऋषि और बुद्धिमत्ता का विराट स्तम्भ अकारण ही नहीं कहा था।

गोखले के असामयिक देहावसान से जागरूक और संवेदनशील हिन्दू और मुसलमान दोनों सन्न थे। राष्ट्रीय शोक की इस घड़ी में एक दूसरे से जुड़कर स्वराज की दिशा में आगे बढ़ने की ज़रूरत दोनों समुदाय बड़ी शिद्दत से महसूस कर रहे थे। नतीजतन, दिसम्बर, 1915 में जब कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन बम्बई में होना तय हुआ तो जिन्ना की पहल पर मुस्लिम लीग ने भी उसी समय अपने अधिवेशन का आयोजन उसी शहर में निश्चित किया। अधिवेशन के पहले 11 नवम्बर को जिन्ना ने मुस्लिम लीग और मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए अपनी अपील में कहा, "क्या हम अपने मतभेद भुलाकर अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक संयुक्त मोर्चा नहीं बना सकते ?...इससे हमारी क़ीमत हमारे हिन्दू दोस्तों की निगाह में बहुत बढ़ जाएगी और पहले से कहीं अधिक वह यह महसूस कर सकेंगे कि हम उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़े होने लायक हो गए हैं।" 30 दिसम्बर, 1915 को एक दूसरे से थोड़ी ही दूरी पर आयोजित कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बम्बई सम्मेलन की अध्यक्षता क्रमशः बंगाल के बैरिस्टर सत्येन्द्र प्रसाद सिन्हा और बिहार के बैरिस्टर (बाद में मौलाना) मज़हरूल हक़ ने की थी। मौलाना मज़हरूल हक़ गांधीजी से तीन साल बड़े थे। वह लन्दन में बैरिस्टरी की अपनी पढ़ाई लगभग ख़त्म कर चुके थे, जब गांधीजी एक शर्मीले विद्यार्थी के रूप में वहाँ पहुँचे थे। जिन्ना की ही तरह वह कांग्रेस के एक उदार और प्रखर राष्ट्रवादी नेता होने के साथ ही मुस्लिम लीग के भी सम्मानित सदस्य थे। अतः कांग्रेस और लीग को एक दूसरे के क़रीब ले आने के लिए जिन्ना को शायद उनसे अधिक उपयुक्त सहकर्मी नहीं मिल सकता था। इन दोनों के प्रभाव से जब लीग का अधिवेशन 30 दिसम्बर, 1915 को प्रारम्भ हुआ तो उसके साथ एकजुटता दिखाने के लिए श्रीमती एनी बेसेंट और श्रीमती सरोजिनी नायडू के साथ गांधीजी भी विशिष्ट अतिथि के रूप में मंच पर विराजमान थे। लीग का यह अधिवेशन मैरीन लाइंस के पारसी जिमख़ाना के पीछे खुली जगह में आयोजित था। लीग के एक वर्ग को, जिसमें अंग्रेज़-परस्त और सामन्ती पृष्ठभूमि के साथ कट्टरपन्थी प्रकृति के नेता भी शामिल थे, कांग्रेस के साथ उसका इस तरह जुड़ाव नागवार गुज़र रहा था। उनका मानना था कि इस तरह कांग्रेस के साथ सहयोग कर लीग न केवल अपनी स्वायत्तता ही खो देगी, बल्कि वह अपने मूल उद्देश्य से भटक जाएगी। इस आरोप और आशंका का निराकरण करते हुए हक़ साहब ने कहा था कि..."व्यक्ति की तरह समुदाय और संगठन को भी *अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व से प्यार होता है। लेकिन अपने अलग-अलग व्यक्तित्व को* बरक़रार रखते हुए जब व्यक्ति और समुदाय आपसी समझदारी से अनेकता के बीच एकता विकसित करते हैं तभी चिरस्थायी राष्ट्रीय प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है।" देश की राजनीति में शायद पहली बार अनेकता में एकता के मुहावरे का प्रयोग मज़हरूल

हक़ साहब ने ही किया था। लीग और कांग्रेस के बीच सहयोग को अमली जामा पहनाने के लिए एक समिति के गठन की ज़िम्मेदारी जिन्ना को सौंपी गई थी। अधिवेशन के दूसरे दिन जैसे ही जिन्ना समिति के गठन पर चर्चा के लिए खड़े हुए, संयुक्त प्रान्त के प्रतिनिधि और उर्दू के चालीस वर्षीय शायर मौलाना हसरत मोहानी के नेतृत्व में उर्दूभाषी प्रतिनिधियों ने उनका उग्र विरोध करते हुए नारेबाज़ी शुरू कर दी। बम्बई मुस्लिम लीग के एक बुज़ुर्ग, असरदार और धनी-मानी अंग्रेज़-परस्त नेता सुलेमान कासिम मिट्ठा के भारी संख्या में जुटे स्थानीय समर्थकों ने भी उनका साथ दिया। दरअसल, सुलेमान कासिम मिट्ठा के समर्थकों में काफ़ी असामाजिक तत्त्व भी पुलिस की मिली-भगत से अधिवेशन के पंडाल में घुस आए थे। अच्छी-ख़ासी संख्या में दाढ़ीधारी पठानों का एक समूह श्रोताओं में से उठकर गुस्से में पश्तो में चिल्लाता हुआ आक्रामक मुद्रा में मंच की ओर बढ़ने लगा। माइक पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा कर मौलाना हसरत मोहानी बोले, "अगर आप मुसलमान हैं तो आपको मुसलमान जैसा दिखना चाहिए। कुरान शरीफ़ कहता है कि आप मुसलमान जैसा पहनावा पहनें। आप मुसलमानों की ज़बान में बोलें।" जिन्ना और मज़हरूल हक़ की ओर ख़ास तौर से मुखातिब हो उन्होंने कहा, "आप ख़ुद को मुसलमानों का रहनुमा दिखाने की कोशिश करते हैं। पर आप उनके रहनुमा कभी नहीं बन सकते।" यह जिन्ना की पश्चिमी जीवन-शैली और उदार धर्मनिरपेक्ष जीवन-मूल्यों पर पहला सार्वजनिक हमला था। इस तरह के हमले झेलने के लिए जिन्ना आजीवन अभिशप्त रहे। मौलाना हसरत मोहानी ने आगे जोड़ा था कि उर्दू वह अकेली मुसलमानों की ज़ुबान है, जिसमें मुस्लिम लीग की कार्यवाही चलनी चाहिए। इस अफरा-तफरी में महिलाओं को जिन्ना ने स्वयं अपनी देखरेख में सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया। अंग्रेज़ पुलिस कमिश्नर को श्रीमती एनी बेसंट ने दो टूक शब्दों में लताड़ते हुए कहा था कि यह सब उन्हीं की दुरभिसन्धि के कारण हुआ। नतीज़तन, मौलाना मज़हरूल हक़ को अधिवेशन की कार्यवाही स्थगित करने की घोषणा करनी पड़ी। पहली जनवरी, 1916 को लीग के सदस्यों की दोबारा बैठक ताजमहल होटल में हुई। इसमें जिन्ना ने पुलिस कमिश्नर के ग़ैर-ज़िम्मेदाराना व्यवहार की कड़ी निन्दा की। हॉल शर्म-शर्म के नारे से गूंज उठा। जिन्ना ने बैठक में लीग की एक समिति गठित करने का प्रस्ताव रखा, जो दूसरे राजनीतिक दलों, ख़ासकर कांग्रेस से मिलकर एक ऐसी योजना तैयार करे जिसके तहत ये दल एक ही मंच से पूरे हिन्दुस्तान में सुधारों और शासन में हिन्दुस्तानियों की अधिक-से-अधिक भागीदारी के लिए असरदार कोशिश कर सकें। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से हर्ष-ध्वनि के साथ पारित हुआ। अध्यक्ष ने हिन्दुस्तान के मुसलमानों की ओर से जिन्ना को लीग को 'फीनिक्स' की तरह एक नया जीवन प्रदान करने के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया।

अप्रैल, 1917 में पंडित मोतीलाल नेहरू की पहल पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों की कार्य-कारिणी की बैठक स्वराज-सन्धि का मसौदा तैयार करने के लिए इलाहाबाद में हुई। सन् 1916 के उत्तरार्द्ध में जिन्ना सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली के

सदस्य पुनः चुन लिये गए। पंडित मोतीलाल नेहरू भी संयुक्त प्रान्त से निर्वाचित हो असेम्बली में जिन्ना के साथ सदस्य बने थे। थोड़े ही समय में दोनों ही एक दूसरे के प्रशंसक बन गए थे। इलाहाबाद की बैठक में मोतीलाल ने जिन्ना का परिचय एक उदार और धर्मनिरपेक्ष नेता के रूप में कराते हुए अन्य मुसलमानों से अलग उनकी शख़्सियत की विशेषता को रेखांकित किया था। इस मसौदे की पुष्टि दोनों दलों द्वारा लखनऊ में साथ आयोजित होनेवाले दोनों दलों के अधिवेशनों में की जानी थी। अक्टूबर, 1916 में अहमदाबाद में आयोजित बम्बई प्रान्तीय सम्मेलन (बॉम्बे प्रॉविन्सियल कॉन्फ्रेंस) के अधिवेशन की जिन्ना ने अध्यक्षता की। इस सम्मेलन में दिया गया जिन्ना का अध्यक्षीय भाषण कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था। उनका कहना था कि बम्बई समेत अंग्रेज़ी सरकार के अधीन सभी प्रान्तों का शासन स्वायत्त (ऑटोनोमस) और चुने हुए प्रतिनिधियों के प्रति ज़िम्मेदार होना चाहिए। हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए प्रान्तीय स्तर पर अल्पसंख्यक होने की स्थिति में पर्याप्त और असरदार प्रतिनिधित्व की गारंटी दी जानी चाहिए। स्थानीय निकायों (म्युनिसपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और टाउन एरिया आदि) को कलेक्टर और कमिश्नर के नियन्त्रण से मुक्त होना चाहिए। उनके अध्यक्षों और सदस्यों का सीधा चुनाव होना चाहिए। प्रेस ऐक्ट और आर्म्स ऐक्ट को लागू करने में यूरोपियनों और हिन्दुस्तानियों के बीच भेदभाव ख़त्म होना चाहिए। सभी के लिए प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य होनी चाहिए। सेना में हिन्दुस्तानियों को महज़ सिपाही के रूप में ही नहीं बल्कि रॉयल कमीशन प्राप्त अधिकारियों के रूप में भी लिया जाना चाहिए। डिफेंस ऑफ़ इंडिया ऐक्ट के प्रावधानों को नागरिक अधिकारों का हनन कर सैनिक शासन (मार्शल लॉ) के प्रावधानों की तरह लागू करने से बाज़ आना चाहिए। इस सन्दर्भ में उन्होंने बम्बई प्रान्त में श्रीमती एनी बेसेंट के प्रवेश पर लगाई गई रोक की कड़े शब्दों में भर्त्सना की। जिन्ना ने अपने भाषण का उपसंहार करते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता पर ज़ोर देते हुए कहा कि इन दोनों महान समुदायों के आपसी सद्भाव और सहयोग में देश की असली उन्नति की कुंजी सन्निहित है। मुसलमानों की अलग निर्वाचन की माँग पर उदारतापूर्वक विचार के आग्रह के साथ उन्होंने हिन्दू मित्रों से भावनापूर्ण अपील करते हुए कहा कि इसके लिए उन्हें (हिन्दुओं को) यदि थोड़ा त्याग भी करना पड़े तो उससे वह विमुख न हों। उनके अनुसार आपसी एकता, सहकार और सहयोग के बल पर संवैधानिक और क़ानूनी रास्ते से संघर्ष करते हुए स्वराज की ओर निरन्तर अग्रसर होना अब कठिन नहीं रहा। उन्होंने अपना भाषण समाप्त करते हुए जोड़ा कि हम सही रास्ते पर हैं और हमारी मंज़िल हमारी निगाह की सीधी जद में है। तरुण हिन्दुस्तान के लिए अब सही आदर्श और नारा है 'आगे बढ़ो।' जिन्ना का यह प्रेरणा-स्फूर्त भाषण युवा कानों में देर तक गूँजता रहा।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल के अठारह समान सोचवाले सदस्यों से विचार-विमर्श कर जिन्ना ने अक्टूबर, 1916 में ही वॉयसराय के माध्यम से ब्रिटिश सरकार को लन्दन भेजने के लिए एक ज्ञापन (मेमोरैंडम) तैयार किया, जिसे आगे चलकर 'उन्नीस के ज्ञापन

(मेमोरैंडम)' नाम से जाना गया। इसमें माँग की गई कि केन्द्रीय और प्रान्तीय विधायिकाओं में बहुमत सीधे चुने गए सदस्यों का हो। केन्द्रीय विधायिका की सदस्य-संख्या 150 और प्रान्तीय विधायिकाओं की सदस्य-संख्या जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए 60 से 100 के बीच हो। वयस्क मताधिकार का विस्तार किया जाए। विधायिकाओं को पहले की तुलना में अधिक संसदीय स्वतन्त्रता, स्वायत्तता और उत्तरदायित्व प्रदान किए जाएँ। ज्ञापन में हिन्दुस्तानी मामलों के लन्दन स्थित मन्त्री का पद समाप्त कर 2 अवर सचिवों (अंडर सेक्रेटरीज़) की नियुक्ति की मांग भी की गई। अवर सचिवों और उनके कार्यालय का ख़र्च हिन्दुस्तान की जगह अंग्रेज़ सरकार द्वारा वहन करने का सुझाव भी उसमें था। हिन्दू और मुसलमान जिन प्रान्तों में भी अल्पसंख्यक हों, वहाँ उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुरक्षित करने के प्रावधान की बात भी उसमें कही गई थी। योरोपियनों और हिन्दुस्तानियों के बीच हथियार रखने के अधिकार के बारे में बरता जा रहा भेदभाव समाप्त करने के साथ हिन्दुस्तानियों को सेना के रॉयल कमीशन की पात्रता प्रदान करने की ज़ोरदार मांगें भी उसमें रखी गई थीं। प्रान्तीय सरकारों और स्थानीय स्वशासी निकायों को अधिक-से-अधिक स्वायत्तता प्रदान करने की आवश्यकता पर भी उसमें ज़ोर दिया गया था। अक्टूबर, 1916 का यह ज्ञापन दिसम्बर, 1916 में लखनऊ कांग्रेस और मुस्लिम लीग के कुछ दिन आगे-पीछे आयोजित अधिवेशनों में विचार-विमर्श का आधार बना।

लखनऊ के क़ैसर बाग़ में दिसम्बर, 1916 के अन्तिम सप्ताह में अम्बिकाचरण मजूमदार की अध्यक्षता में सन् 1907 के विभाजन के बाद पहली बार कांग्रेस के दोनों दलों का संयुक्त अधिवेशन आयोजित हुआ। इसमें लोकमान्य तथा उनके अनुयायियों का कांग्रेस में पुनरागमन पर हार्दिक और भावपूर्ण स्वागत किया गया। बम्बई कांग्रेस के एक वरिष्ठ प्रतिनिधि के रूप में जिन्ना उसमें न केवल उपस्थित थे, बल्कि उसकी कार्यवाहियों में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। अधिवेशन में विचार के लिए अपने सुझावों और प्रस्ताव पर नवम्बर, 1916 के बीच वह मजूमदार से पहले ही विस्तारपूर्वक कलकत्ते में बातचीत कर चुके थे। कांग्रेस के अधिवेशन के तीन दिन बाद क़ैसर बाग़ में ही आयोजित मुस्लिम लीग के अधिवेशन में जिन्ना ने 30 दिसम्बर के अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा—"मनुष्य के सार्वजनिक कार्य-कलाप में वह सब, जो महान और प्रेरणादायक है, जिसके लिए संसार में किसी भी जगह और किसी युग में मनुष्य जाति के श्रेष्ठतम और बड़े से बड़े पराक्रमियों ने अपना पूरा जीवन लगा दिया, उसे गढ़ा और यातनाएँ झेलीं, आज हिन्दुस्तान के अन्तर को बहुत गहरे उद्वेलित कर रहा है।...पूरा देश नियति के आवाहन पर आँखें खोल रहा है और उत्सुकता भरी आशा से नए क्षितिज की तलाश में है। सच्ची लगन, विश्वास और संकल्प की भावनाएँ हमारी धरती पर हिलोरें ले रही हैं। सभी दिशाओं में नए जीवन का स्पन्दन साफ़ दिखाई दे रहा है। हिन्दुस्तान के मुसलमान अपने और अपनी पिछली परम्परा के प्रति सच्चे साबित नहीं होंगे, अगर इन्होंने इस नई आशा में अपने को पूरी तरह हिस्सेदार नहीं बनाया और देश के उस

आवाहन की ओर ध्यान नहीं दिया, जो हिन्दुस्तान की देशप्रेमी सन्तानों को अन्दर तक आन्दोलित कर रहा है। उनकी निगाह भी अपने हिन्दू देशवासी भाइयों की तरह आज भविष्य पर गड़ी हुई है।"...

"लेकिन ऑल इंडिया मुस्लिम लीग के हज़रात आपकी पूरी क़ौम और पूरे मुल्क की निगाह इस वक़्त आप पर टिकी हैं। जो फ़ैसला इस ऐतिहासिक हाल और लीग के इस ऐतिहासिक सेशन में आप करेंगे, वह पूरे वज़न और ताक़त से आगे जाएगा। उसे क़ानूनन ऐसे फ़ैसले के तौर पर लिया जाएगा, जिस पर सात करोड़ हिन्दुस्तानी मुसलमानों के चुनिन्दा नेताओं और नुमाइन्दों का दावा रहेगा। इस फ़ैसले की फ़ितरत पर हिन्दुस्तान के भविष्य, हिन्दुस्तान की एकता, हमारे मुश्तरका आदर्शों और हमारी संवैधानिक आज़ादी की आकांक्षाओं की बुनियाद होगी।"

जिन्ना ने अपने भाषण में ब्रिटिश नौकरशाही के "उन ओछे-दोगले और हताशा-भरे फिकरों" की ओर इशारा किया, जो अक्सर हिन्दुस्तानी देश-प्रेमियों के मुँह पर उछाल दिए जाते हैं। उन्होंने अंग्रेज़ों की उन घिसी-पिटी बातों का मखौल उड़ाते हुए ज़िक्र किया, जिन्हें अक्सर दुहराया जाता है। जैसे कि हिन्दुस्तानी अपने ऊपर ख़ुद राज करने लायक़ नहीं हैं ओर लोकतान्त्रिक संस्थाएँ पूरब के वातावरण में फल-फूल नहीं सकतीं। जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस तरह की बातों को बेबुनियाद और बेवक़ूफ़ी-भरी बताते हुए उसे जड़ से ख़ारिज कर दिया। "देश-प्रेम ओर राष्ट्रीय आत्मचेतना की जीवन्त-तेजस्वी भावना, अब तक दबी युवाजन की जनहित के लिए उमड़ती गहरी संवेदना और ऊर्जस्विता, जो हिन्दुस्तान की फड़कती रगों में एक नया स्पन्दन पैदा कर रही थीं," का ओजस्वी वाणी में स्वागत करते हुए उन्होंने आगे कहा कि "इस नई चेतना का सबसे महत्त्वपूर्ण और आशाप्रद पहलू यह था कि इस सर्वथा नवजात आन्दोलन से उभरी भावना देश को राष्ट्रीय एकता की दिशा में ले जा रही थी, जो हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एकजुटता, भाईचारा, सार्वजनिक हित के लिए अपूर्व समर्पण और सेवा के भाव जगा रही थी।"

मुस्लिम लीग और कांग्रेस के प्रतिनिधियों का एक दो दिवसीय सम्मेलन कलकत्ता में, नवम्बर, 1916 में लखनऊ-अधिवेशन के पहले हो चुका था, जिसमें एक राय से यह आम सहमति विस्तृत विचार-विमर्श के बाद बनी थी कि दोनों दल एकजुट होकर हिन्दुस्तान में जनप्रतिनिधित्व करनेवाली सरकार स्थापित करने के लिए संयुक्त माँग पूरी ताक़त लगाकर करें और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सभी मुमकिन कारगर क़दम आपसी तालमेल के साथ उठाए जाएँ। कांग्रेस अध्यक्ष अम्बिकाचरण मजूमदार ने अपने अध्यक्षीय भाषण में हिन्दुओं और मुसलमानों की इस आम सहमति का उत्साहपूर्ण ढंग से सन्दर्भ दिया था। लोकमान्य तिलक ने अधिवेशन के दौरान कहा था कि हिन्दुस्तान में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना के समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह किसी के साथ भी सहयोग के लिए तैयार हैं। यहाँ तक कि अंग्रेज़ नौकरशाही से हाथ मिलाने में भी वह कभी पीछे नहीं रहेंगे, यदि वह देश में स्वराज और राष्ट्रहित के लिए कोई

सार्थक योजना तैयार करती है। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लखनऊ अधिवेशन के दौरान जो सहमति बनी थी, उसे लखनऊ समझौते के नाम से जाना जाता है। इस समझौते का सबसे महत्त्वपूर्ण और दूरगामी परिणामवाला पहलू था प्रान्तीय और केन्द्रीय विधायिकाओं में मुसलमानों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व पर सहमति, जिससे आम मुसलमानों की 'हिन्दू राज' में अपनी धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान खोने की आशंका निर्मूल की जा सके। लखनऊ समझौते के तहत केन्द्र और बम्बई प्रान्त में एक-तिहाई तथा पंजाब, बंगाल, संयुक्त प्रान्त (अविभाजित उत्तर प्रदेश), बिहार, उड़ीसा, मध्य भारत और मद्रास प्रान्तों में क्रमशः 50, 40, 30, 25, और 15 प्रतिशत स्थान मुसलमानों के लिए सुरक्षित रखने की बात पर सहमति दर्ज की गई थी।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के दौरान जिन्ना का कांग्रेस में महत्त्व और वर्चस्व निर्विवाद था। उनके धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रीय दृष्टिकोण के सम्बन्ध में किसी भी शंका की गुंजाइश नहीं थी। इसीलिए वह कांग्रेस के अपने ग़ैर-मुसलमान, ख़ासतौर से हिन्दू सहयोगियों को विश्वास दिलाने में कामयाब रहे, कि मुसलमानों की चिन्ता और डर दूर करने के लिए यह ज़रूरी था कि उन्हें आश्वस्त कर दिया जाए कि उनकी जनसंख्या के अनुपात से कहीं अधिक उनके लिए केन्द्रीय और प्रान्तीय विधायिकाओं में सुरक्षित सीटों का प्रावधान कर दिया गया था। मुस्लिम लीग के लखनऊ अधिवेशन में दिए गए उनके भाषण में राष्ट्रीयता और हिन्दू-मुस्लिम एकता की जो भावनापूर्ण अपील स्वराज की दिशा में बढ़ने के लिए की गई थी, वह कई दृष्टियों से अनूठी थी। पहली बार मुस्लिम लीग के मंच से इस तरह के गहरे देशप्रेम से ओत-प्रोत भावपूर्ण भाषण लोगों ने सुने थे। आगे जिन्ना ने फिर कभी ऐसा भाषण स्वयं भी नहीं दिया। आगे जब मुस्लिम लीग द्वारा अलगाववादी राजनैतिक रास्ता अख़्तियार किया गया तो जिन्ना के भाषण का ऊपर उद्धृत अश उसके गले की हड्डी बन गया। नतीजतन जब बाद में मुस्लिम लीग की राजनीतिक रणनीति के तहत आवश्यक दस्तावेज़ और पैम्फ़लेट तैयार किए जाने लगे, तो जिन्ना के लखनऊ भाषण का उक्त अंश हटा दिया गया। पर आज भी जिन्ना की धर्मनिरपेक्ष और व्यापक राष्ट्रीय सोच के साक्ष्य के रूप में वह भाषण जस का तस कई पुस्तकों में सुरक्षित है।

जिन्ना अपने समय के उन बहुत थोड़े से दूरदर्शी नेताओं में से थे, जो एक बार उद्देश्य निश्चित हो जाने पर उसकी प्राप्ति के लिए तन-मन-धन से योजनाबद्ध रूप से जुट जाते थे। लखनऊ समझौते के आधार पर संविधान का विशद प्रारूप उन्होंने तैयार कर लिया था, जिसे देश के चुने हुए संविधान विशारदों द्वारा ड्राफ़्ट कर मुस्लिम लीग और कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कराकर, इंग्लैंड की संसद के सामने प्रस्तुत करने की उनकी योजना थी। इसके लिए इंग्लैंड की युद्धजन्य संकट की घड़ी में वह उसकी सहायता के लिए सद्भावना और सहयोग के ईमानदार संकेत के रूप में अधिक-से-अधिक आर्थिक संसाधन जुटाने के लिए अपील करने से भी नहीं चूके। जिन्ना द्वारा वॉयसराय से की गई अपील और अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन को प्रतिष्ठित थियोसॉफ़िस्ट तथा मद्रास

हाईकोर्ट के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश डॉ. सुब्रमण्यम अय्यर द्वारा लिखे पत्र के फलस्वरूप राजद्रोह के अभियोग में 16 जून, 1917 को नज़रबन्द श्रीमती एनी बेसेंट को 17 सितम्बर, 1917 को रिहा कर दिया गया था। जिस निष्ठा और प्रतिबद्धता से श्रीमती बेसेंट ने हिन्दुस्तान को स्वशासन का पूरा अधिकार दिए जाने के लिए अपनी ज़ोरदार आवाज़ विभिन्न मंचों से देश-विदेश में उठाई थी, उससे पूरा देश अभिभूत था। मई 1916 में बेलगाम और अहमद नगर में स्वराज और 'होमरूल' के पक्ष में दिए ओजस्वी मराठी भाषण के कारण राजद्रोह के अभियोग में लोकमान्य तिलक को भी गिरफ़्तार कर लिया गया था। उनके वकील के रूप में जिन्ना ने बॉम्बे हाईकोर्ट में अपील कर उनकी गिरफ़्तारी का आदेश निरस्त करा दिया था। लोकमान्य तिलक और श्रीमती बेसेंट की रिहाई में जिन्ना के प्रयास ख़ासतौर से रेखांकित हुए थे। नतीजतन, इन दोनों की रिहाई पर देश के प्रबुद्ध वर्ग ने जिन्ना के प्रति विशेष कृतज्ञता का अनुभव किया था।

सन् 1916 से सन् 1918 तक के तीन साल जिन्ना के अब तक के सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन की अभूतपूर्व उपलब्धियों के लिए ख़ासतौर से जाने जाते हैं। एक राष्ट्रीय नेता के रूप में उनकी प्रतिष्ठा इस दौरान आकाश चूम रही थी। 16 जून को श्रीमती बेसेंट के नज़रबन्द किए जाने के दूसरे ही दिन 17 जून सन् 1917 को जिन्ना ने न केवल (सन् 1916 में श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा स्थापित) होमरूल लीग की सदस्यता ग्रहण कर ली थी, बल्कि वह उसकी बम्बई शाखा के अध्यक्ष भी बन गए थे। होमरूल लीग का नाम श्रीमती बेसेंट ने (जो स्वयं एक आयरिश थीं) आयरलैंड के एक उग्रवादी स्वतन्त्रता सेनानी पार्नेल द्वारा स्थापित हिंसक 'होमरूल मूवमेंट' नामक संगठन के आधार पर रखा था। इस पृष्ठभूमि से कांग्रेस के नरम दलीय नेता भली-भाँति परिचित थे। अतः उनके कान खड़े हो गए थे। नरम दलीय नेताओं में से अकेले 95 वर्षीय दादाभाई नौरोज़ी ने न केवल इस नए दल की स्थापना का स्वागत किया, बल्कि उन्होंने उसकी अध्यक्षता के लिए भी स्वीकृति दे दी। श्रीमती बेसेंट को कांग्रेस के नरमदलीय नेता एक 'अधीर आदर्शवादी' कहते थे। इस पृष्ठभूमि में दादाभाई द्वारा होमरूल लीग के अध्यक्ष-पद की स्वीकृति और भी उल्लेखनीय है। दिसम्बर सन् 1906 में कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में दादाभाई के सचिव रहे जिन्ना ने इसीलिए उनके देहान्त के तुरन्त बाद श्रीमती एनी बेसेंट के नज़रबंद होते ही इस नवोदित दल की अध्यक्षता का भार स्वयं सहर्ष स्वीकार कर लिया था। अब जिन्ना देश के तीन महत्त्वपूर्ण राजनीतिक दलों (कांग्रेस, मुस्लिम लीग और होमरूल लीग) के शीर्षस्थ नेताओं में से थे। यह उनकी अनूठी उपलब्धि थी। दुर्भाग्यवश मुस्लिम लीग और कांग्रेस की सहमति से तैयार की गई लखनऊ-समझौते की योजना कभी कार्यान्वित नहीं हो पाई। दोनों दलों में ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं थी, जो धर्म और सम्प्रदाय के निहायत सीमित दायरे और संकुचित हितों की भावना से मुक्त नहीं हो पाए थे। कुछ प्रभावशाली, किन्तु संकुचित साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के ये नेता ही इसमें आड़े आए। लखनऊ-समझौते का अमल में न आ पाना बीसवीं सदी के हिन्दुस्तान के त्रासद इतिहास का पहला प्रस्थान बिन्दु था।

इसी कालखंड में, चालीस वर्षीय प्रौढ़ जिन्ना पहली और अन्तिम बार प्रेम-विद्ध हुए थे। बम्बई के मालाबार हिल के उनके अपने बँगले से कुछ ही दूरी पर शहर के प्रसिद्ध पारसी रईस सर दिनशा पेटिट अपनी पत्नी लेडी दीनाबाई, किशोरी बेटी रतनबाई और बेटे जमशेद के साथ रहते थे। जिन्ना अक्सर समय-मिलने पर उनसे मिलने और फ़ुर्सत के पल वहाँ बिताने जाते थे। सर दिनशा पेटिट के बँगले पूना और दार्जिलिंग में भी थे। कई बार पेटिट परिवार के साथ छुट्टियाँ बिताने जिन्ना पूना और दार्जिलिंग भी जाते थे। 20 फ़रवरी, 1900 को जन्मी रतनबाई को उन्होंने एक बच्ची से धीरे-धीरे चपल-चंचल किशोरी के रूप में विकसित होते हुए देखा था। बम्बई की राजनीतिक सरगर्मियों की चर्चा अक्सर जिन्ना की उपस्थिति में पेटिट परिवार में होती रहती थी। दादाभाई नौरोज़ी, सर फ़िरोज़शाह मेहता, गोखले, तिलक और सरोजिनी नायडू जैसे राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्रबिन्दु व्यक्तियों के साथ जिन्ना का नाम भी अक्सर चर्चा में रहता था। जैसे-जैसे जिन्ना की प्रतिष्ठा बढ़ती गई, किशोरी रतनबाई जिसे प्यार से रत्ती कहते थे, उनकी ओर कुछ अधिक ध्यान देने लगी। जिन्ना की सुरुचिपूर्ण पश्चिमी वेषभूषा, उनका शिष्टाचार, उनकी बातचीत की शैली, उनकी राजनीतिक बहसें, सभाओं में दिए गए उनके प्रभावशाली तर्कसंगत अंग्रेज़ी भाषण और वकालत के पेशे में बढ़ती दिन-दूनी रात-चौगुनी उनकी प्रतिष्ठा रत्ती के लिए उन्हें विशिष्ट बनाती थी। धीरे-धीरे उनमें परस्पर आकर्षण का भाव पैदा होने लगा। दार्जिलिंग में साथ बिताई छुट्टियों के दौरान चालीस वर्षीय जिन्ना और सत्रह वर्षीया रत्ती के पारस्परिक आकर्षण की कोमल बेल उद्दाम प्रेम में पल्लवित हो उठी। दार्जिलिंग से लौटकर जिन्ना ने जब सर दिनशा से रत्ती का हाथ माँगा तो उनके आश्चर्य और क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। रत्ती इस समय नाबालिग थीं। अतः कोर्ट के आदेश से जिन्ना के उससे मिलने पर रोक लगा दी गई। पार्वती-सी दृढ़ संकल्प वाली रत्ती जिस दिन अठारह साल की हुईं, उसी दिन अपने पिता का घर छोड़कर जिन्ना के पास चली गई। 18 अप्रैल, 1918 को उन्हें इस्लाम धर्म में दीक्षित कर उनका नाम मरियम बेगम कर दिया गया था। 19 अप्रैल, 1918 को जिन्ना के साथ रत्ती का निकाह हुआ। निकाहनामे में उनका नाम यद्यपि मरियम बेगम दर्ज है, किन्तु आजीवन वह रत्ती या रतनबाई के नाम से ही जानी गईं। उनके मज़ार पर भी रतनबाई नाम ही दर्ज है। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने उन्हें बम्बई का सबसे मोहक पुष्प कहा था।

छरहरी देहयष्टि की चम्पकवर्णी रत्ती का लालन-पालन पूरे पश्चिमी ढंग से हुआ था। हँसमुख, वाक्चतुर, बुद्धिमती और अनिन्द्य, सुन्दरी रत्ती राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत, धर्मनिरपेक्ष दृष्टिसम्पन्न, दयालु-हृदय और किसी भी प्रकार के भेदभाव से मुक्त गरिमामयी युवती थीं। पश्चिमी वेशभूषा और क़ीमती रत्नजटित आभूषण उनकी पाश्चात्य अभिजात जीवन-शैली के अपरिहार्य अंग थे। वह उन्मुक्त विचारों की महिला थीं। क़ीमती सिगरेट, रत्नजटित हाथीदाँत के होल्डर में लगाकर पीना उनका विशेष शौक था। पशुओं, ख़ासतौर से बिल्ली और कुत्ते से उन्हें बहुत लगाव था। लावारिस जानवरों

की देखरेख के लिए उन्होंने एक संस्था का गठन भी किया था। देह-व्यवसाय से जुड़ी स्त्रियों और उनके बच्चों के पुनर्वास में भी उनकी रुचि थी। रत्ती ने 14-15 अगस्त, 1919 की अर्धरात्रि को लन्दन में अपनी एकमात्र सन्तान दीना को जन्म दिया था। आगे चलकर जिन्ना के प्रबल प्रतिरोध के बावजूद दीना ने पारसी उद्योगपति नेविल वाडिया से शादी कर ली थी। प्रसिद्ध उद्योगपति और बॉम्बे डाइंग समूह के अध्यक्ष नुसली वाडिया उनके पुत्र हैं। राजनीति और वकालत के पेशे की व्यस्तता के बीच जिन्ना रत्ती की ओर उतना ध्यान नहीं दे पाते थे, जितने की वह अपने को हक़दार समझती थीं। अतः वह आहिस्ता-आहिस्ता अपने को उपेक्षित समझते हुए अवसादग्रस्त रहने लगीं। रत्ती का मालाबार हिल वाले जिन्ना के बँगले में प्रवेश, कहीं न कहीं अब तक वहाँ एकछत्र राज करनेवाली फ़ातिमा को खटकता रहता था। उनका व्यवहार रत्ती के प्रति आत्मीय नहीं था। उनकी प्रतिकूलता ने भी रत्ती के अवसाद को बढ़ाने में योगदान दिया। इन स्थितियों के दबाव में वह पराविद्या और तन्त्र-विज्ञान की ओर उन्मुख होती गई। वह प्रेतात्माओं से सम्पर्क में रुचि लेने लगीं। उनके स्नेह के केन्द्र में अब उनकी बेटी और बिल्लियाँ थीं, जिन्हें वह बच्चों-सा ही प्यार करती थीं। परस्पर सम्बन्धों में लगातार आती गिरावट के दौरान एक स्थिति ऐसी आई, जब वह जिन्ना से अलग ताजमहल होटल में कमरा लेकर रहने लगीं। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य गम्भीर रूप से गिरने लगा। लन्दन और पेरिस के नर्सिंग होम में उनकी चिकित्सा हुई। पर कुछ ख़ास लाभ नहीं हुआ। 20 फ़रवरी, 1929 को अपने उन्तीसवें जन्मदिन पर उन्होंने इस संसार से विदा ली। जिन्ना उनके देहान्त के समय दिल्ली में थे। उनके अन्तिम संस्कार के समय उनकी क़ब्र पर जिन्ना फूट-फूटकर बच्चों की तरह बिलखे थे। रत्ती जिन्ना पर और विस्तार से चर्चा उन पर लिखे स्वतन्त्र अध्याय में अलग से की जा रही है।

प्रथम विश्व महायुद्ध के दौरान अंग्रेज़ सरकार के युद्ध विषयक प्रयासों में सहयोग के प्रश्न पर जिन्ना के दृष्टिकोण पर थोड़ा विस्तारपूर्वक चर्चा 'गांधी और जिन्ना' तथा 'आकलन' शीर्षक अध्यायों में की गई है। पर यहाँ एक ख़ास घटना का ज़िक्र जिन्ना के उस समय के तेजस्वी राष्ट्रवादी रूप को रेखांकित करने में सहायक सिद्ध होगा। 24 अप्रैल, 1918 को रत्ती से विवाह के पाँच दिन बाद वॉयसराय लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड द्वारा जारी की गई युद्ध में सहायता की अपील के जवाब में कांग्रेस और होमरूल लीग के नेताओं ने, जिनमें जिन्ना भी शामिल थे, 'बॉम्बे क्रानिकल' में एक संयुक्त बयान जारी किया था। बयान में कहा गया था कि आयरलैंड की तरह हिन्दुस्तान को भी अंग्रेज़ सरकार की ओर से आश्वासन मिलना चाहिए कि अंग्रेज़ी साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन के लिए उसकी एक अर्से से चली आ रही माँगों का सम्मान किया जाएगा। स्वतन्त्रता के झंडे के नीचे इंग्लैंड के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान के सभी स्त्री-पुरुष तब कठिन से कठिन लड़ाई और बलिदान के लिए कुछ भी बाक़ी नहीं छोड़ेंगे। लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड को यह बयान रास नहीं आया था। इस पृष्ठभूमि में 1918 के बजट पर बहस के दौरान केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली में जिन्ना ने सेना में भर्ती के अभियान

को समर्थन देने के पहले शर्त रखी कि हिन्दुस्तानियों को सेना में अंग्रेज़ों और यूरोपियनों के साथ बराबरी का दर्जा दिया जाए। जिन्ना ने ख़ासतौर से इस बात पर ज़ोर दिया कि योग्य हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज़ों और यूरोपियनों की तरह रॉयल कमीशन प्रदान कर उन्हें कमीशन प्राप्त अधिकारी के रूप में भी लिया जाए। जिन्ना द्वारा कही गई ये बात लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड को निहायत नागवार गुज़री थी। उन्होंने अपनी नाराज़गी का इज़हार करते हुए जिन्ना को झिड़कते हुए कहा था कि यह तो सौदेबाज़ी हुई। आहत और उत्तेजित जिन्ना ने इसका मुँहतोड़ जवाब देते हुए कहा था कि "ख़ुद अपने देश में आत्मसम्मान के लिए राजा के बराबर दर्जे की प्रजा के रूप में समानता के रास्ते की बाधा दूर करने की अपनी सरकार से माँग क्या सौदेबाज़ी है ? माई लॉर्ड, क्या यह कहना सौदेबाज़ी है कि हमें अपने देश में अंग्रेज़ और यूरोपीय प्रजा के बराबर माना जाए ?" वॉयसराय को जिन्ना ने अपनी आहत वाणी से निरुत्तर कर दिया था। उनका यह प्रयास निरर्थक नहीं गया था। फ़रवरी, 1925 के सेना के हिन्दुस्तानीकरण के लिए अंग्रेज़ी सरकार ने एक विशेष समिति का गठन किया। जिन्ना को भी उस समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। यूरोप और इंग्लैंड के प्रतिष्ठित सैन्य प्रशिक्षण संस्थानों का दौरा कर समिति ने जो रिपोर्ट दी, उसमें जिन्ना का महत्त्वपूर्ण योगदान था। समिति की संस्तुतियों पर अमल करते हुए इंग्लैंड के नामी सैन्य प्रशिक्षण संस्थान सैंडूहर्स्ट की तर्ज पर देहरादून में इंडियन मिलिटरी अकेडमी की स्थापना की गई। अंग्रेज़ी शासन के दौरान सेना के उच्च पदों पर हिन्दुस्तानियों की भर्ती का जिन्ना का स्वप्न इस तरह साकार हुआ। सेना के हिन्दुस्तानीकरण में उनका योगदान लगभग भुला दिया गया है।

प्रथम विश्व महायुद्ध में सहयोग के लिए वॉयसराय द्वारा दिल्ली में आयोजित सम्मेलन में गांधी तथा अन्य नेताओं के साथ भाग लेकर जिन्ना बम्बई पहुँचे। यहाँ बम्बई के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड वेलिंग्टन द्वारा इसी विषय पर आयोजित प्रान्तीय सम्मेलन का निमन्त्रण उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। दिल्ली सम्मेलन की कटुता का स्वाद अभी उनके मुँह में हल्का भी नहीं पड़ा था कि वेलिंग्टन के भाषण ने उसे और गहरा कर दिया। सम्मेलन में शामिल कुछ महत्त्वपूर्ण सज्जनों की राजनीतिक गतिविधियों, ख़ासतौर से होमरूल लीग के सक्रिय सदस्यों की नीयत और ईमानदारी पर, उन्होंने युद्ध में सहयोग के प्रयासों में सन्देह व्यक्त किया था। यक़ीनन यह इशारा जिन्ना और उनके ख़ास सहयोगियों की तरफ़ था। अपनी बेलौस साफ़गोई और ईमानदारी के लिए जिन्ना की शोहरत देश की सीमा पार कर गई थी। इंग्लैंड और यूरोप के जानकार हलकों में भी इसके लिए उन्हें आदर की निगाह से देखा जाता था। अतः वेलिंग्टन द्वारा अपनी नीयत और ईमानदारी पर शक के साफ़ इशारे से उनका तिलमिला उठना स्वाभाविक था। उन्होंने सेंट्रल लेजिस्लेटिव काउंसिल और दिल्ली सम्मेलन में कही गई अपनी बात को और पैने ढंग से बम्बई सम्मेलन में दोहराया। तर्क-वितर्क की कटुता के साथ यह सम्मेलन ख़त्म हुआ। अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान और व्यक्तिगत निष्ठा पर आघात को जिन्ना और उनके संवेदनशील सहयोगी पचा नहीं पा रहे थे। इसका दंश उन्हें महीनों

सालता रहा। छः माह बाद लॉर्ड वेलिंग्टन का बम्बई के गवर्नर के रूप में कार्यकाल समाप्त हुआ। इस अवसर पर 11 दिसम्बर, 1918 को टाउन हॉल में एक विशाल विदाई-समारोह आयोजित हुआ। जिन्ना और उनके सहयोगियों ने इस आयोजन को विफल करने के लिए कमर कस ली थी। समारोह के रंग में भंग डालने के लिए रत्ती और अपने सहयोगियों तथा प्रशंसकों के साथ वह टाउन हॉल की सीढ़ियों पर रात में ही जाकर बैठ गए। दस बजे जैसे ही टाउन हॉल का दरवाज़ा खुला उन्होंने उसके आगे की कुर्सियों पर क़ब्ज़ा कर लिया। समारोह के अध्यक्ष सर जमशेदजी जिज्जी भाई ने सभा की कार्यवाही शुरू होते ही जैसे ही वेलिंग्टन के सम्मान में अभिनन्दन पत्र पढ़ना शुरू किया, आगे की कुर्सियों से एकसाथ 'शर्म ! शर्म !' और 'नहीं-नहीं' के ज़ोरदार नारे गूँजने लगे। सभागार में घंटों अराजकता और शोरगुल का वातावरण व्याप्त रहा। यह विरोध-प्रदर्शन इतना प्रबल और सुनियोजित था कि बड़ी मुश्किल से शाम के पाँच बजे पुलिस जिन्ना और उनके समर्थकों से सभागार ख़ाली कराने में कामयाब हो सकी। संवैधानिक मार्ग से देश के लिए स्वराज-प्राप्ति के प्रबल पक्षधर शान्त, संयत और शालीन जिन्ना ने अपने जीवन में पहली और अन्तिम बार ऐसे स्वतःस्फूर्त आक्रामक जनप्रतिरोध का सीधा नेतृत्व किया था। इस घटना के बाद पलक झपकते वह जनता के लाड़ले हीरो बन गए थे। हॉल के बाहर कड़े पुलिस बन्दोबस्त के बावजूद उतावली उत्तेजित भीड़ नारे लगाते हुए उनका और उनके साथियों का इन्तज़ार कर रही थी। साथियों सहित उनके हॉल से बाहर निकलते ही भीड़ उनके पीछे-पीछे चल पड़ी। नज़दीक ही अपोलो स्ट्रीट के दोनों ओर इकट्ठे जनसमूह को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि "11 दिसम्बर, 1918 का दिन बम्बई के इतिहास का सुनहरे अक्षरों में लिखे जानेवाला दिन है। यह वह दिन है, जब नौकरशाही और निरंकुश शासन की मिली-जुली ताक़त भी आपको डरा नहीं सकी। बम्बई के नागरिकों ने आज के दिन प्रजातन्त्र की बहुत बड़ी विजय दर्ज की है। आप जाएँ और प्रजातन्त्र की इस विजय पर जी भरकर ख़ुशियाँ मनाएँ।"

उसी दिन रात में मशालों और गैस की रोशनी में शान्ताराम चाल में एक विशाल प्रदर्शन का आयोजन हुआ, जो बाद में एक सभा में बदल गया। देखते-देखते उत्साहित जनता ने वहीं 35 हज़ार रुपए इकट्ठे कर लिए। उसमें अधिकांश एक रुपए के सिक्के थे। महीने-भर के भीतर एक-एक रुपए कर 65 हज़ार रुपए एकत्रित हो गए। कांग्रेस, होमरूल लीग और मुस्लिम लीग से सक्रिय रूप से जुड़े एक समृद्ध मुसलमान नेता थे उमर सोभानी। उन्होंने भी 11 दिसम्बर, 1918 के उस प्रतिरोध में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। बम्बई कांग्रेस की कार्यकारिणी में उन्होंने इस ऐतिहासिक घटना की स्मृति को चिरस्थायी बनाए रखने के लिए एकत्रित राशि को पीपुल्स जिन्ना मेमोरियल हॉल के निर्माण में ख़र्च करने का प्रस्ताव रखा। उनका यह प्रस्ताव हर्ष-ध्वनि के साथ सर्वसम्मति से पारित हुआ। कांग्रेस कार्यालय के प्रांगण में निर्मित उस हॉल का उद्घाटन करने के लिए श्रीमती एनी बेसेंट मद्रास से बम्बई पधारीं। स्मारक की दीवार पर लगे

संगमरमर के शिलालेख में मोहम्मद अली जिन्ना के शौर्यपूर्ण और तेजस्वी नेतृत्व में बम्बई के नागरिकों की ऐतिहासिक विजय दर्ज है। यह स्मारक आज भी जिन्ना के उस साहसिक स्वतःस्फूर्त जन-प्रतिरोध की गौरव गाथा कह रहा है। यहाँ यह जानकारी दिलचस्प होगी कि सन् 1935-36 में इसी हॉल में बारह वर्षीय बालक कुमार गन्धर्व ने बम्बई में सर्वप्रथम अपने गायन के तीन कार्यक्रमों से यहाँ के संगीत-प्रेमियों को मन्त्र-मुग्ध किया था। एक लम्बे अर्से तक पीपुल्स जिन्ना हॉल बम्बई की संस्कृति और कला की गतिविधियों से लगातार स्पन्दित रहा।

3

रौलट-रिपोर्ट से ख़िलाफ़त–असहयोग आन्दोलन तक

सन् 1919 से सन् 1921 तक

नवम्बर, 1918 में प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के साथ हिन्दुस्तान में राजनीतिक घटनाचक्र तेज़ी से घूमने लगा। जिन्ना के जीवन में सन् 1919 से मोहभंग का एक लम्बा दौर शुरू होता है। सन् 1919 और सन् 1921 के बीच उन्होंने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल, होमरूल लीग और कांग्रेस से इसी मोहभंग की प्रक्रिया में एक-एक कर त्यागपत्र दे दिया था। संवैधानिक मार्ग से ब्रिटेन के राजमुकुट के अधीन स्वराज प्राप्ति के पक्षधर नरमदलीय (मॉडरेट) कांग्रेस नेता नेपथ्य में जा चुके थे। गरमदलीय नेता, जिन्हें अतिवादी की जगह राष्ट्रवादी कहा जाने लगा था, अब कांग्रेस के मंच पर छा चुके थे। दादाभाई नौरोज़ी, सर फ़िरोज़शाह मेहता, बदरूद्दीन तैयबजी और गोपाल कृष्ण गोखले जैसे नरमदलीय नेताओं की विचार-सरणि से सहमत जिन्ना इस नए वातावरण में .ख़ुद को राजनीति की बदली हुई मुख्यधारा से अलग और कटा-कटा अनुभव करने लगे थे। सन् 1920 में लोकमान्य तिलक के देहान्त के बाद गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस के राजनीतिक तेवर और मुहावरों में अभूतपूर्व गुणात्मक बदलाव लगातार वड़ी तेज़ी से आता जा रहा था।

हिन्दुस्तान में राजनीतिक सुधार और शासन में यहाँ के लोगों को सीमित भागीदारी देने के लिए इंग्लैंड में हिन्दुस्तानी मामलों के मन्त्री लॉर्ड एडविन सैमुएल, मान्टैग्यू और यहाँ के वॉयसराय लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड की संयुक्त रिपोर्ट 8 जुलाई, 1918 को प्रकाशित हुई। जिन्ना और मान्टैग्यू एक दूसरे से पहले से ही परिचित थे। हिन्दुस्तानी मामलों के लन्दन स्थित विभाग में मान्टैग्यू सन् 1910 से 1914 तक अवर सचिव (अंडर सेक्रटरी) रह चुके थे। सन् 1911 और सन् 1917 में वह 2 बार हिन्दुस्तान, यहाँ की राजनीतिक स्थिति का सीधा अध्ययन करने के लिए आ चुके थे। अपनी हिन्दुस्तान यात्रा के दौरान हुई यहाँ के नेताओं से मुलाक़ातों का उन्होंने बड़ा दिलचस्प विवरण दिया है। श्रीमती एनी बेसेंट, महात्मा गांधी और जिन्ना से वह ख़ासे प्रभावित हुए थे। इन तीनों नेताओं के व्यक्तित्व का बड़ा ही सूक्ष्म निरूपण उन्होंने अपनी डायरी में किया है। श्रीमती बेसेंट और गांधी के बाद डायरी में उल्लेख के अनुसार, *"युवा, पूर्णतः व्यवहारशिष्ट, देखने*

में अत्यन्त प्रभावशाली और आपादमस्तक द्वन्द्वात्मक तार्किकता से लैस जिन्ना मिलने आए। वह अपनी पूरी योजना मनवाने के लिए कृतसंकल्प लगे। वह बड़े ही चतुर और बुद्धिमान हैं। दरअसल यह बहुत बड़ी नाइंसाफ़ी है कि उनके जैसे शख़्स के सामने अपने ही देश का शासन चलाने का कोई अवसर उपलब्ध नहीं है।'' डायरी की यह टिप्पणी जिन्ना और मान्टैग्यू के बीच एक गहरे सामंजस्य के भाव का संकेत देती है। इसके बरअक्स लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड के साथ जिन्ना का हमेशा छत्तीस का रिश्ता रहा। काउंसिल और उसके बाहर दोनों के बीच कई बार टकराव हो चुके थे। बहरहाल, मान्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट का ध्यानपूर्वक अध्ययन-विश्लेषण करने के बाद जिन्ना ने उसमें कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के सुझाव दिए। रिपोर्ट से पूरी तरह सहमत न होते हुए भी, उस पर अपनी आलोचनात्मक टिप्पणी का उपसंहार करते हुए, उन्होंने प्रेस में एक बयान दिया, जिसमें देशवासियों से आग्रह किया गया था कि वे रिपोर्ट का सम्मान करते हुए, उस पर संजीदगी से विचार करें।

जिन्ना के बरअक्स श्रीमती ऐनी बेसेंट की प्रतिक्रिया एकदम उलट थी। उन्होंने दो टूक शब्दों में कहा था कि ऐसी रिपोर्ट पेश करना, जहाँ इंग्लैंड के लिए अशोभनीय था, वहीं उससे कहीं अधिक अशोभनीय थी हिन्दुस्तान द्वारा उसे मान लिए जाने की उम्मीद। जिन्ना ने श्रीमती बेसेंट को अपना दृष्टिकोण समझाने की भरपूर कोशिश की थी। पर वह नाकामयाब रहे। 2 घंटे की श्रीमती बेसेंट से विस्तृत बातचीत के बाद जब वह बाहर आए तो उनके (जिन्ना के) मित्र और समर्थक कानजी द्वारकादास ने नतीजा जानना चाहा। सिर पर हाथ रखकर जिन्ना ने सिर्फ़ इतना कहा, *''मेरे प्यारे दोस्त, एक औरत से कभी भी बहस नहीं करनी चाहिए।''*

लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड के पूर्ववर्ती वॉयसराय लॉर्ड हार्डिंग्स के साथ जिन्ना के दोस्ताना सम्बन्ध थे। हार्डिंग्स के बरअक्स चेम्सफ़ोर्ड जिन्ना को पहली मुलाक़ात में ही व्यवहार में निहायत ठंडे और निपट औपचारिक लगे। अपने प्रति व्यवहार में गर्मजोशी की कमी जिन्ना बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। अतः वह चेम्सफ़ोर्ड के रवैए और भाषणों को लेकर अपनी नापसन्दगी का इज़हार खुलेआम करने लगे थे। इसका सबसे दिलचस्प संकेत जुलाई, 1917 में मुम्बई की एक सभा में चेम्सफ़ोर्ड की उपस्थिति में दिए गए उनके एक भाषण में मिलता है। इसमें उन्होंने नवजागृत हिन्दुस्तानियों की आशा-आकांक्षाओं के अनुरूप देश के शासन में सुधार की बात करते हुए कहा था कि उन्हें पूरी उम्मीद है कि उनकी आवाज़ शिमला के उस ठंडे विरल वातावरण को भेद सकेगी जहाँ वॉयसराय एक *'सोची समझी ख़ामोशी'* अख़्तियार किए हुए उस समय बैठे हैं, जबकि *''सारा हिन्दुस्तान अन्तर की गहराई तक पूरी तरह आन्दोलित है।''* ज्ञातव्य है कि शिमला अंग्रेज़ों के शासनकाल में हिन्दुस्तान की ग्रीष्मकालीन राजधानी और वॉयसराय का आवास-स्थल हुआ करता था।

यहाँ लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड को भी थोड़ा समझना ज़रूरी है। अप्रैल, 1917 में उन्होंने, लॉर्ड हार्डिंग्स से वॉयसराय का कार्यभार ग्रहण किया था। उनकी सोची-समझी चुप्पी के पीछे

दरअसल, अपनी राय बनाने के पहले हिन्दुस्तान की प्रजा, उसके नेताओं और यहाँ की राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों को समझने की उनकी लगातार चल रही कोशिशें थीं। अपने ढंग से, बिना वस्तुस्थिति का आकलन किए वह कुछ ख़ास बोलना-कहना नहीं चाहते थे। जब उन्होंने यहाँ के बारे में चीज़ों को अपने ढंग से पढ़-समझ लिया तब उन्होंने सम्राट को एक पत्र में लिखा :

"यहाँ (हिन्दुस्तान में) एक शिक्षित वर्ग है जिसका 95 प्रतिशत हमारे प्रति दुश्मनी का भाव रखता है और मैं ज़ोर देकर कहता हूँ कि यहाँ हर विश्वविद्यालय का हर छात्र हमारे प्रति नफ़रत के साथ बड़ा हो रहा है। फ़िलहाल यह सही है कि वे यहाँ की जनसंख्या के बहुत छोटे अंश हैं पर साल-दर-साल तादाद में उनकी बढ़ोतरी होती जा रही है और यह सहज कल्पना की जा सकती है कि उनमें अनिष्ट की अनन्त सम्भावनाएँ हैं। उन्हें अपनी ओर खींचने का, मेरे विश्वास के मुताबिक़, एक ही तरीक़ा है, वह है कि उनका सहयोग पाने के लिए उन्हें आमन्त्रित किया जाए।"

उक्त पत्रांश जहाँ उनकी औपनिवेशिक सदाशयता को प्रतिध्वनित करता है, वहीं यह भी बताता है कि इस देश के विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रही युवा और किशोर पीढ़ी में पनपती राजनीतिक जागरूकता के बीच, ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति गहराते असन्तोष और आक्रोश की हरारत को भाँपना उन जैसे शीर्षस्थ अधिकारी के लिए भी मुश्किल नहीं रह गया था। चेम्सफ़ोर्ड के बरअक्स अँगड़ाई लेते युवा हिन्दुस्तान की मान्टैग्यू की समझ कहीं अधिक दूरदर्शितापूर्ण और धारदार थी। उन्हें हिन्दुस्तान में *"चारों तरफ़ खौलते-उफनते राजनीतिक चेतना के पारावार की गर्जना-प्रतिध्वनि"* अविकल और साफ़ सुनाई दे रही थी। इस अभूतपूर्व स्थिति का बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और रचनात्मक विवेक के साथ मुक़ाबला करने की क्षमता उन्हें हिन्दुस्तान की अंग्रेज़ नौकरशाही में दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रही थी। मान्टैग्यू के अनुसार "वॉयसराय समेत तत्कालीन नौकरशाही, हर नई समस्या और स्थिति का सामना करने के लिए, फ़ाइलों के समुद्र में गोता लगाकर नजीर ढूँढ़ने के अलावा किसी कल्पनाशील समझ और विवेक-संगत निर्णय में दयनीय रूप से अक्षम थी। उन्होंने हर चीज़ को शासक और शासित, सरकार और विरोधी पक्ष में बाँटकर रख दिया था। अनौपचारिक बातचीत और विचार-विमर्श की, लगता है, कोई जानकारी ही नहीं थी। राजनीतिक सहज-बोध उन्हें छू तक नहीं गया था। फ़ाइलों में छिपी नजीर के अभाव में वह पंगु थे।" मान्टैग्यू ने अपनी डायरी में दर्ज़ किया है कि काश वह अभिशप्त नौकरशाही को दिन-प्रतिदिन गम्भीर से गम्भीरतर होती स्थिति का अहसास कराते हुए उसे यह समझा पाते कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तान में जल्द ही फूट पड़नेवाले एक ज्वालामुखी पर बैठे थे।

चेम्सफ़ोर्ड के पत्र और मान्टैग्यू की डायरी से साफ़ है कि दोनों के सोच और समझ में एक़ हद तक समानता थी। सम्भवतः इसी के फलस्वरूप वे एक संयुक्त रिपोर्ट तैयार कर सके थे। मान्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट में प्रान्तों के लिए दोहरे शासन (डायर्की) की सिफ़ारिश की गई थी। उसमें दो सदनोंवाली विधायिका के नीचे के सदन विधान सभा

(असेम्बली) में सीधे चुने गए ग़ैरसरकारी सदस्यों और ऊपर के सदन राज्य-परिषद् (काउंसिल ऑफ़ स्टेट–वर्तमान विधान परिषद् का पूर्व रूप) में मनोनीत सदस्यों के बहुमत का सुझाव था। उनकी कार्य-सूची में स्थानान्तरित (ट्रांसफ़र्ड) और सुरक्षित (रिजर्व्ड) दोनों विषयों का समावेश था पर उन्हें कोई ख़ास अधिकार और दायित्व सौंपने का प्रावधान रिपोर्ट में नहीं किया गया था। वॉयसराय की कार्यकारिणी में हिन्दुस्तानी प्रतिनिधित्व 2 से बढ़ाकर 3 कर देने का सुझाव भी दिया गया था। रिपोर्ट के प्रकाशन के साथ उसकी सिफ़ारिशों को अमली जामा पहनाने के लिए लॉर्ड साउथबारो की अध्यक्षता में दो समितियों का गठन किया गया था। एक को कार्यवृत्त-समिति (फंक्शन कमिटी) और दूसरे को मताधिकार समिति (फ्रैन्चाइज कमिटी) का नाम दिया गया था। यह जानकारी दिलचस्प होगी कि मताधिकार समिति ने स्त्रियों को मताधिकार न देने की सिफ़ारिश की थी।

जहाँ जिन्ना मान्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट को थोड़े से परिवर्तन-परिवर्धन के साथ मान लेने के पक्ष में थे, वहीं गांधी भी उसे एकदम नामंजूर कर देने के हक़ में नहीं थे। इस तरह जिन्ना और गांधी की प्रतिक्रिया रिपोर्ट पर लगभग समान थी। गांधी ने तो यहाँ तक कहा था कि रिपोर्ट के प्रस्ताव हिन्दुस्तान को इतने अधिकार और दायित्व दे रहे थे जितने की वहन करने की फ़िलहाल उसमें क्षमता थी *("इट गेव इंडिया ऐज़ मच शी कुड च्यू")*।

कांग्रेस के जिन्ना के अलावा दूसरे नरमदलीय नेता भी यद्यपि रिपोर्ट से पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं थे, पर उसे निराशाजनक नहीं मान रहे थे। रिपोर्ट पर विचार के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन पटना में हुआ। राजेन्द्र बाबू के सुझाव के बावजूद श्रीमती बेसेंट रिपोर्ट के समर्थन के कारण गांधीजी को पटना अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप में मानने को तैयार नहीं हुईं। उन्होंने कहा था कि गांधी और बहुत सारे कार्यों के लिए अच्छे हो सकते हैं, पर वह राजनीतिज्ञ नहीं हैं। पटना अधिवेशन की अध्यक्षता कलकत्ता हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश सैयद हसन इमाम ने की, जो सन् 1916 में पटना हाईकोर्ट खुलने के बाद बैरिस्टर के रूप में प्रैक्टिस करने के लिए यहीं बस गए थे। ज्ञातव्य है कि यद्यपि मान्टैग्यू चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट दोनों की सहमति से तैयार की गई थी किन्तु वॉयसराय के रूप में लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड, प्रान्तों के गवर्नर और उनसे जुड़ी नौकरशाही को यह यक़ीन था कि हिन्दुस्तानी अभी ख़ुद ज़िम्मेदार सरकार चलाने लायक़ नहीं बन पाए थे। हिन्दुस्तानियों के नेतृत्व की क्षमता और योग्यता में जो विश्वास मान्टैग्यू को था, उससे वॉयसराय चेम्सफ़ोर्ड और उनके गवर्नर अपने पूरे अमले के साथ सहमत नहीं हो पा रहे थे। इसके साथ ही हिन्दुस्तानियों, ख़ासकर युवा वर्ग में, अंग्रेज़ सरकार और उसके रवैए के प्रति लगातार बढ़ते आक्रोश और असन्तोष को नज़रअन्दाज़ करना भी उनके लिए असम्भव होता जा रहा था। बंगाल, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पंजाब और महाराष्ट्र में अरविन्द, लाला हरदयाल, श्यामजी कृष्ण वर्मा और सावरकर से अनुप्रेरित एक ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार हो गया था, जिसे कांग्रेस के नरम और गरम दलों से कुछ भी

लेना-देना नहीं था। वह सशस्त्र क्रान्ति के ज़रिए देश को स्वतन्त्र कराने में विश्वास रखता था। हिंसा से उसे रंचमात्र भी परहेज़ नहीं था। 1909 में पंजाब के एक तेजस्वी तरुण युवक मदनलाल धींगरा ने लन्दन में एक वरिष्ठ अंग्रेज़ अधिकारी कर्नल सर कर्ज़न वाइली की गोली मारकर हत्या कर दी थी। उसके लिए उन्हें फ़ाँसी दे दी गई थी। सरकार-विरोधी आपत्तिजनक गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए सरकार ने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान डिफेंस ऑफ़ इंडिया ऐक्ट (हिन्द सुरक्षा अधिनियम) बनाया था। इसके तहत कांग्रेस, होमरूल लीग और मुस्लिम लीग के संवैधानिक रास्ते से स्वराज प्राप्ति के मार्ग से असहमत राजनीतिकर्मियों और तरुणों से बड़ी सख़्ती से निपटा गया था। इस क़ानून की अवधि विश्वयुद्ध की समाप्ति के साथ पूरी हो गई थी। अतः नवजागृत तरुणों और आश्वासनों से ऊब चुके राजनेताओं के आक्रोश और उनकी गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने के लिए एक और क़ानून की ज़रूरत अंग्रेज़ नौकरशाही शिद्दत के साथ अनुभव कर रही थी। इस पृष्ठभूमि में जहाँ एक ओर मॉन्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट को तैयार करने का काम चल रहा था, वहीं दूसरी ओर नई राजनीतिक सरगर्मियों और क्रान्तिकारी चुनौतियों से निपटने के लिए जस्टिस रौलट की अध्यक्षता में एक नए क़ानून की सिफ़ारिश के लिए एक समिति का गठन 10 सितम्बर, 1917 को कर दिया गया था।

मॉन्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट के प्रकाशन के ठीक ग्यारह दिन बाद 19 जुलाई, 1918 को रौलट समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। मान्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट से देश की सत्ता में भागीदारी की जो हल्की-सी आशा हिन्दुस्तानियों में जगी थी, उस पर रौलट समिति की रिपोर्ट ने भीषण तुषारापात कर दिया। 6 फ़रवरी, 1919 को रौलट समिति की रिपोर्ट के आधार पर एक विधेयक केन्द्रीय विधायिका (सेंट्रल लेजिस्लेटिव काउंसिल) में पेश किया गया। राजद्रोह के अपराध से निपटना उसका विशेष उद्देश्य बताया गया था। इसमें बिना जूरी के मुकदमा चलाने का प्रावधान था। बिल के अनुसार सरकार की रीति-नीति की किसी भी ज़ोरदार आलोचना और विरोध को राजद्रोह की परिधि में लिया जा सकता था। कोई धार्मिक आन्दोलन, दो सम्प्रदायों के झगड़े, पुरज़ोर बहस-मुबाहिसे तथा इसी ढंग की अन्य गतिविधियाँ राजद्रोह और क्रान्तिकारी आन्दोलन के अंग माने जा सकते थे। बिल में नौकरशाही और पुलिस के हाथों में अनियन्त्रित अधिकार देने का प्रावधान था। बिना कारण बताए किसी को भी गिरफ्तार किया जा सकता था। की गई कार्यवाही के विरुद्ध किसी प्रकार की अपील की व्यवस्था नहीं थी। बिल में बड़ी ही बेशर्मी से साक्ष्य के सम्मानित नियमों को तिरस्कृत कर दिया गया था। काउंसिल की दर्शक दीर्घा से पगड़ी, लम्बे कोट और धोती में गांधीजी ने भी बिल पर चल रही बहस को ध्यान से दो दिन सुना था। इसका उन पर गहरा असर पड़ा था। गांधीजी ने बिल के प्रावधानों का थोड़े से शब्दों में संक्षेपण कर दिया था— *'वकील नहीं, दलील नहीं, अपील नहीं।'* जल्द ही ये शब्द करोड़ों कंठों से नारे के रूप में देश-भर में गूँज उठे थे। ऐसे दुर्दान्त विधेयक की भर्त्सना सदन के सभी हिन्दुस्तानी सदस्यों ने, जिनकी

संख्या बाईस थी, एक स्वर से की थी, पर सरकार द्वारा मनोनीत सदन के चौंतीस सदस्यों के समर्थन से 23 मार्च, 1919 को यह विधेयक क़ानून के रूप में पास हो गया था। वॉयसराय चेम्सफ़ोर्ड ने सदन के कार्य संचालन के नियमों को ताक पर रखकर जिस अशोभनीय जल्दबाजी के साथ बिल को पास कराया था, उससे उनकी नीयत की कलई खुल गई थी। पूरे देश ने इसे काला क़ानून कहकर इसकी एक स्वर में भर्त्सना की थी। काउंसिल में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, तेज बहादुर सप्रू, विट्ठल भाई पटेल, श्रीनिवास शास्त्री, सर शंकरन नायर, एम.आर. जयकर, मदन मोहन मालवीय के साथ जिन्ना ने भी इसका प्रबल विरोध किया था। सर शंकरन नायर वॉयसराय की कार्यकारिणी के एकमात्र हिन्दुस्तानी सदस्य थे। अतः उनका विरोध विशेष महत्त्वपूर्ण था। वस्तुतः उन्होंने अपना विरोध लिखकर दर्ज कराया था। इसे वापस लेने के लिए उन पर ख़ासा दबाव डाला गया था। पर वह अड़े रहे।

रौलट विधेयक जिस दिन सदन के पटल पर रखा गया था, उसी दिन जिन्ना ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी कि *"यदि क्रान्तिकारी गतिविधि कोई बीमारी है तो यह विधेयक उसका एकदम ग़लत इलाज है।"* आहत मन से उन्होंने कहा था :

"किसी भी सभ्य देश के क़ानून के इतिहास में इस तरह के क़ानून की कोई मिसाल नहीं मिलती।...अगर विधेयक क़ानून बना तो इससे अभूतपूर्व असन्तोष और आन्दोलन पैदा होगा और उसका जनता और सरकार के सम्बन्धों पर बड़ा ही अनर्थकारी प्रभाव पड़ेगा।"

बिल पास होते ही नफ़रत, निराशा और आक्रोश से भरे जिन्ना तुरन्त दिल्ली से बम्बई लौट आए थे। उन्होंने मालाबार हिल स्थित अपने बँगले से वॉयसराय चेम्सफ़ोर्ड को अपने पत्र में लिखा था कि "उनकी (वॉयसराय) सरकार ने उन सभी बातों और तर्कों को नकार दिया था, जिसके आधार पर उसने साल-भर पहले युद्ध के दौरान हिन्दुस्तानियों से सहयोग और सहायता माँगी थी। सरकार ने उन उसूलों को बेरहमी से कुचल दिया था, जिनकी रक्षा के लिए क़सम खाकर उन्होंने युद्ध लड़ा था। न्याय के मौलिक सिद्धान्तों को समूल उखाड़कर फेंक दिया गया था और जनता के संवैधानिक नागरिक अधिकारों का एक ऐसे वक़्त में बेशर्मी से उल्लंघन किया जा रहा था, जब सरकार को किसी तरह का कहीं से भी वास्तविक ख़तरा नहीं था। यह सब कुछ एक ऐसी बददिमाग़ नौकरशाही द्वारा किया जा रहा था जो न तो इस देश की जनता के प्रति जवाबदेह थी और न ही जिसे जनता के वास्तविक विचारों का रंचमात्र ज्ञान था। उन्होंने आगे लिखा था कि "वह अब पूरी शिद्दत के साथ यह महसूस करने लगे थे कि काउंसिल के लिए उनकी कोई उपयोगिता नहीं रह गई थी।" पत्र में उन्होंने आगे जोड़ा था कि "उनका आत्म-सम्मान और आगे एक ऐसे सदन का सदस्य बने रहने की अनुमति नहीं दे रहा था जो अपनी जनता के वास्तविक प्रतिनिधियों की सच्ची भावनाओं का इतनी बेशर्मी से अनादर कर रहा हो।" वॉयसराय को लिखे इस पत्र के ज़रिए जिन्ना ने काउंसिल की सदस्यता से काले क़ानून के रूप में देश-भर में निन्दित रौलट ऐक्ट

का एक बार फिर प्रबल विरोध दर्ज कराते हुए इस्तीफ़ा दे दिया था।

देश के अनेक पढ़े-लिखे समझदार और संवेदनशील लोगों की तरह जिन्ना का राष्ट्रीय स्वाभिमान रौलट ऐक्ट से बहुत गहरे आहत हुआ था। इम्पीरियल काउंसिल के वह अकेले चुने हुए हिन्दुस्तानी सदस्य थे, जिन्होंने काले क़ानून के नाम से कुख्यात रौलट ऐक्ट के विरोध में अपनी सदस्यता का त्याग किया था। यह उनकी अदम्य राष्ट्रीयता का ज्वलन्त प्रमाण था। वितृष्णमन जिन्ना का ध्यान एक बार फिर अपने प्रशंसक और हिन्दुस्तानी मामलों के इंग्लैंड में मन्त्री उदारमना मान्टैग्यू की ओर गया था। उन्होंने यह आशा व्यक्त की थी कि हिन्दुस्तान के जनमानस और यहाँ की राजनीतिक स्थिति की अपनी गहरी समझ के फलस्वरूप वह सम्राट को इस काले क़ानून को स्वीकृति न प्रदान करने के लिए राजी कर लेंगे।

इस दौरान गांधी बम्बई में गम्भीर रूप से अस्वस्थ चल रहे थे। प्राकृतिक चिकित्सा के प्रबल पक्षधर, उन्होंने बहुत समझाने-बुझाने के बाद बवासीर के रोग से मुक्त होने के लिए 21 जनवरी, 1919 को अपने ऑपरेशन की अनुमति दी थी। ऑपरेशन के दूसरे दिन से ही वह पत्रों द्वारा रौलट बिल के विरुद्ध जनमत जागृत करने में जुट गए थे। उन्होंने श्रीनिवास शास्त्री को अपने बिस्तर से लिखा था कि यह बिल सीधा सबूत था कि नौकरशाही हमारी गर्दन पर लगातार अपनी दबोच बनाए रखने के लिए कुछ भी कर सकती थी। जन-जागृति का एक अभूतपूर्व पारावार आसेतु-हिमांचल हिलोरें ले रहा था। गांधी को डॉक्टरों ने कम-से-कम तीन माह के विश्राम की सलाह दी थी। यह समय उन्हें इंग्लैंड या यूरोप में बिताने का सुझाव दिया गया था। पर रौलट क़ानून को लेकर गांधी इतने विचलित थे कि देश के संकट की उस घड़ी में विश्राम की राय उन्हें रास नहीं आई। उन्होंने रौलट क़ानून के विरोध के लिए दक्षिण अफ्रीका की तर्ज पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आह्वान किया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के तहत सत्याग्रह के अस्त्र का सफलतापूर्वक प्रयोग वह दक्षिण अफ्रीका के रंगभेदकारी गिरमिटिया विरोधी क़ानून के खिलाफ़ कर चुके थे। उनके आह्वान ने देश की नसों में सर्वत्र बिजली का संचार-सा कर दिया था। बहत्तर वर्षीया श्रीमती एनी बेसेंट, जो स्वयं रौलट क़ानून की प्रबल विरोधी थीं और देश के बड़े शहरों में घूम-घूमकर उसके विरुद्ध जनमत जगा रही थीं तथा 'न्यू इंडिया' में अपनी लेखमाला द्वारा उसकी तर्क-संगत आलोचना कर रही थीं, गांधी के सत्याग्रह सम्बन्धी आह्वान से सहमत नहीं थीं। उनकी आस्था संवैधानिक मार्ग से स्वराज हासिल करने में अब भी बरक़रार थी। पर हिन्दुस्तान में गांधी की आँधी चलनी शुरू हो चुकी थी। ग़ौरतलब है कि कलकत्ता और मद्रास में नरमदलीय नेताओं के प्रभाव के कारण यद्यपि गांधी के आह्वान का इतना ज़ोरदार असर नहीं पड़ा था जितना कि बम्बई, दिल्ली और उसके आसपास के इलाक़ों तथा पंजाब पर, लेकिन देश का शायद ही कोई हिस्सा बचा हो जो उससे उपजी हरकत और हरारत से अछूता था। नतीज़तन दिल्ली और पंजाब में गांधी के प्रवेश पर सरकार ने रोक लगा दी थी। गांधी के आह्वान पर दिल्ली में तीस मार्च, 1919 को हड़ताल के दौरान प्रदर्शनकारियों पर चली

गोली से कई मौतें हुई थीं। बम्बई के देश-भर में प्रतिष्ठित महान नरमदलीय नेता दादाभाई नौरोज़ी, फ़िरोज़शाह मेहता और गोखले दिवंगत हो चुके थे। जिन्ना का प्रभाव यद्यपि पढ़े-लिखे वर्ग पर उल्लेखनीय था, पर वह जन-नेता नहीं बन सके थे। गांधी को दिल्ली से ही पकड़कर बम्बई भेज दिया गया था। यहाँ 6 अप्रैल, 1919 को गांधी के आह्वान पर पूरे शहर में मुकम्मल हड़ताल का आयोजन अभूतपूर्व सफलता के साथ किया गया। दो लाख से भी अधिक लोगों ने समुद्र में एक साथ स्नान कर दिन-भर उपवास रखा। गांधी के नेतृत्व में माधव बाग मन्दिर तक एक विशाल जुलूस पहुँचा, जो ग्रांट रोड स्थित मस्जिद में एक विराट सभा के रूप में बदल गया। सभी धर्मों, जातियों और नस्लों के लोगों को, जो कि जुलूस में वहाँ पहुँचे थे, गांधी, जिन्ना, सरोजिनी नायडू, उमर सोभानी और जमनादास द्वारकादास जैसे नेताओं ने सम्बोधित किया था। एक अपूर्व देशभक्ति की लहर पूरे शहर में हिलोरें ले रही थी। इस सभा की अभूतपूर्व सफलता से बम्बई की पूरी अंग्रेज़ नौकरशाही घबरा गई थी।

दूसरे दिन 7 अप्रैल, 1919 को गांधी ने रौलट क़ानून और प्रेस क़ानून की धज्जियाँ उड़ाते हुए 'सत्याग्रही' नाम से एक साप्ताहिक अख़बार का प्रकाशन शुरू कर दिया। इसने विचलित अंग्रेज़ नौकरशाही के रोष की आग में घी का काम किया। इसके फलस्वरूप बम्बई के गवर्नर और मुख्य सचिव की रिपोर्ट पर गम्भीरतापूर्वक विचार के उपरान्त 12 अप्रैल को वॉयसराय ने बर्मा के गवर्नर को तार द्वारा सूचित किया कि निकट भविष्य में शीघ्र ही ऐसा सम्भव है कि कम-से-कम छह लोगों को बम्बई से हिन्दुस्तान के बाहर देशनिकाला देकर बर्मा भेजना पड़े। तार में आशा व्यक्त की गई थी कि वह (बर्मा के गवर्नर) उनकी सुपुर्दगी स्वीकार कर इस काम में सहायक सिद्ध होंगे। देशनिकाले के लिए बम्बई के जिन नेताओं के नाम विचाराधीन थे, उनमें 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के सम्पादक बी.जी. हॉर्निमन, जमनादास द्वारकादास, उमर साभानी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, शंकरलाल बैंकर, जिन्ना और गांधी के नाम प्रमुख थे। ज्ञातव्य है, दिल्ली स्थित गृह-विभाग के सचिव ने बम्बई के मुख्य सचिव को लिखा था कि फ़िलहाल गांधी और जिन्ना के नाम देशनिकाला के लिए प्रस्तावित सूची में न रखे जाएं। संभवतः उनके और ख़ासकर गांधी के लगातार बढ़ते राजनीतिक क़द से अंग्रेज़ सरकार को भय था कि यदि उन्हें भी देशनिकाला दिया गया तो एक अभूतपूर्व देशव्यापी जनरोष और जन-आन्दोलन का सामना अंग्रेज़ सरकार को करना पड़ सकता था।

पंजाब में स्थिति और भी विस्फोटक थी। 9 अप्रैल, 1919 को रामनवमी थी। प्रान्त के हर महत्त्वपूर्ण शहर में हिन्दुओं, मुसलमानों तथा सिक्खों का मिला-जुला जुलूस इस दिन निकाला गया। आपसी भाईचारे का एक अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ रहा था। गांधी के पंजाब-प्रवेश पर लगी रोक से सभी आहत और क्रुद्ध थे। 10 अप्रैल को अमृतसर में रौलट-क़ानून और गांधी के प्रवेश पर लगी रोक के विरोध में निकाले गए एक जुलूस का नेतृत्व कर रहे दो सम्मानित नेता गिरफ़्तार कर लिए गए थे। उनकी गिरफ़्तारी से जुलूस अनियन्त्रित हो उठा। उसमें मिले असामाजिक तत्त्वों ने दो योरोपीय बैंक लूट

लिए। अराजकता के बीच हुए हमले में महिलाओं सहित कई योरोपीय बैंक-कर्मचारी बुरी तरह घायल हो गए। टाउन हाल, पोस्ट ऑफ़िस तथा कुछ अन्य सरकारी दफ्तरों में आग लगा दी गई। स्थिति से निपटने के लिए जिला प्रशासन ने क़ानून और व्यवस्था को अंग्रेज़ी सेना के ब्रिगेडियर जनरल आर.ई. डायर के सुपुर्द कर दिया था। डायर के निर्देश पर सेना ने दो दिनों तक शहर में हिंसा और आतंक के लोमहर्षक तांडव किए। 13 अप्रैल, 1919 को वैशाखी का पर्व था। चारों ओर से ऊँची चहारदीवारी से घिरे जलियाँवाला बाग में स्थानीय और पास के गाँवों से जुटे निहत्थे स्त्री-पुरुषों की, जिसमें बच्चे भी थे, एक शान्त सभा का आयोजन किया गया था। उसमें सभी धर्मों के लोग थे। सभा पर लगाई गई रोक के बावजूद इसमें लोगों ने भारी संख्या में हिस्सा लिया था। सभा अभी शुरू ही हुई थी कि जनरल डायर अपनी घुड़सवार सेना के साथ सभा-परिसर में घुस आया। सैनिकों ने निहत्थी बेकसूर जनता पर कुल 1605 राउंड गोलियाँ चलाईं।

इसमें चार सौ लोग तुरन्त मर गए। कई हज़ार बुरी तरह घायल हुए। डायर ने ऐसा हिन्दुस्तानियों को सबक सिखाने के लिए किया था। यह आतंक अमृतसर तक ही सीमित नहीं था। गुजराँवाला में जनता की एक विशाल शान्तिपूर्ण सभा पर हवाई जहाज़ से बमबारी की गई थी। उस समय वहाँ सरोजिनी नायडू का भाषण चल रहा था। लाहौर में हज़ारों छात्रों को संगीन की नोक पर चिलचिलाती धूप में 16 मील तक दौड़ाकर यूनियन जैक की सलामी के लिए मजबूर किया गया था। पूरे पंजाब में अनिश्चित काल के लिए मार्शल लॉ लगा दिया गया था। पंजाब के दमन, ख़ासकर अमृतसर के नृशंस हत्याकांड के लिए, न केवल हिन्दुस्तान में; बल्कि इंग्लैंड, योरोप और अमेरिका में भी यहाँ की अंग्रेज़ी सरकार की घोर निन्दा की गई थी। इंग्लैंड में सबसे तीखी भर्त्सना हाउस ऑफ़ कामन्स के सदस्य और इंग्लैंड के युद्ध सम्बन्धी मामलों के मन्त्री सर विन्स्टन चर्चिल ने की थी। चर्चिल ने जनरल डायर की बर्बर कार्यवाही को एक *'बेमिसाल राक्षसी कृत्य' कहा था।*

जलियाँवाला बाग के नृशंस हत्याकांड पर जिन्ना की तुरन्त प्रतिक्रिया उपलब्ध नहीं है। दरअसल वह उस दौरान मुस्लिम लीग के एक प्रतिनिधिमंडल के नेता के रूप में इंग्लैंड रवाना हो चुके थे। उन्हें इंग्लैंड के प्रधानमन्त्री लॉयड जार्ज को यह समझाने के लिए भेजा गया था कि वह पेरिस में होनेवाली शान्ति वार्ता में सर सत्येन्द्र प्रसाद सिन्हा और महाराजा बीकानेर के अलावा एक मुसलमान प्रतिनिधि को भी हिन्दुस्तानी मुसलमानों की नुमाइन्दगी के लिए भेजने की व्यवस्था करें। जिन्ना मई के मध्य में लन्दन पहुँच गए थे। वह उम्मीद कर रहे थे कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में उन्हें पेरिस शान्ति वार्ता में हिस्सा लेने का निमन्त्रण मिलेगा। पर लन्दन में चेम्सफ़ोर्ड बिलिंडन तथा बम्बई प्रान्त के नए गवर्नर जार्ज लॉयड ने उनके ख़िलाफ़ तत्कालीन राजसत्ता के गलियारों में इतना विषवमन कर रखा था कि वहाँ का वातावरण ज़रा भी उनके अनुकूल सिद्ध नहीं हो रहा था। गवर्नर लॉयड ने जिन्ना के प्रशंसक हिन्दुस्तानी

मामलों के मन्त्री एडविन मान्टैग्यू तक के कानों में उनके ख़िलाफ़ ज़हर घोल दिया था। लॉयड ने मॉन्टैग्यू को लिखा था कि वह (जिन्ना) बातचीत में चिकने-चुपड़े पर दिल के निहायत काले थे। आन्दोलनकारियों में वह सबसे ज़्यादा असंगत थे। वह उन विचित्र अविश्वसनीय लोगों में से थे, जो लगातार एक बात कहते रहेंगे और बाद में उसका उलटा करेंगे। नतीज़तन जिन्ना को हिन्दुस्तानी मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में पेरिस की शान्तिवार्ता में शामिल होने का अवसर इंग्लैंड की सरकार ने नहीं प्रदान किया। इसके अलावा हिन्दुस्तान की राजनीति में बढ़ते उनके क़द और महत्त्व के अनुरूप लन्दन के राजनीतिक हलकों में उनका गर्मजोशी से स्वागत भी नहीं हुआ। इससे उनका गहरे उदास और हताश होना स्वाभाविक था। पर एक राहत थी। उनकी आसन्नप्रसवा उन्नीस वर्षीया प्यारी पत्नी रत्ती और अन्तरंग मित्र दीवान चमनलाल साथ थे। 14-15 अगस्त (1919) की रात को रत्ती ने एक चाँद-सी बेटी को जन्म दिया था, जिसका नाम दोनों ने मिलकर 'दीना' रखा था। चौवालीस वर्ष की प्रौढ़ उम्र में जिन्ना पहली बार पिता बने थे। यह उनके व्यक्तिगत जीवन का रत्ती से विवाह के बाद पहला हर्षोल्लास का अवसर था।

मॉन्टैग्यू की सदाशयता में जिन्ना सहित कई हिन्दुस्तानी नेताओं की आस्था अभी भी बनी हुई थी। मॉन्टैग्यू ने भी उन्हें निराश नहीं होने दिया था। हिन्दुस्तानी मामलों के मन्त्री के रूप में उन्होंने पंजाब से मार्शल लॉ हटवा दिया था। प्रेस पर लगा कठोर नियन्त्रण भी उठा दिया था। पंजाब की घटनाओं की जाँच के लिए हंटर की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त कर दिया गया था। इन कार्यवाहियों ने हिन्दुस्तानियों के घाव पर एक हद तक मरहम का काम किया था। मॉन्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट की सिफ़ारिशों में कुछ परिवर्तन कर उसे एक विधेयक के रूप में इंग्लैंड के हाउस ऑफ़ कामन्स के पटल पर रख दिया गया था। रिपोर्ट के प्रकाशन के समय ही जिन्ना और गांधी दोनों उसे मंज़ूर कर लेने के पक्ष में नहीं थे। किन्तु रौलट बिल के कारण स्थिति एकदम बदल गई थी। जिस रूप में अब मॉन्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट की सिफ़ारिशें परिवर्तित-परिवर्धित रूप में इंग्लैंड के सदन में पेश की गई थीं, जिन्ना के मन में उसे लेकर एक बार फिर सत्ता में हिन्दुस्तानियों की भागीदारी की उम्मीद जगी थी। पर उन्हें पता था कि जब तक बदली हुई परिस्थिति में गांधी का रुख़ उनके अनुकूल नहीं होता तब तक हिन्दुस्तान में उसके पक्ष में वातावरण बनना सम्भव नहीं था। अतः गांधी के मन की थाह लेने के लिए उन्होंने लन्दन से जून में एक पत्र लिखा था। गांधी ने अपनी प्रतिक्रिया से उन्हें साफ़-साफ़ अवगत करा दिया था। उन्होंने अपने जवाब में लिखा था कि *"अन्य किसी सुधार की बात तब तक बेकार है जब तक कि रौलट-क़ानून को निरस्त कराने में कामयाबी हासिल नहीं होती। इसके कारगर प्रतिरोध का सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं था।"* उन्होंने आगे कहा था कि *"ईश्वर ने चाहा तो वह अगले सप्ताह किसी भी प्रकार की हिंसा की घटना घटित न हो इसकी पूरी सावधानी बरतते हुए सत्याग्रह दुबारा शुरू कर देंगे।"* जिन्ना के लन्दन-प्रवास के दौरान लिखे एक

और पत्र में गांधी ने उम्मीद जताई थी कि *"हिन्दुस्तान लौटकर श्रीमती जिन्ना चर्खा चलाना सीखेंगी और जिन्ना जितनी जल्दी मुमकिन होगा गुजराती और हिन्दी की अच्छी जानकारी हासिल करेंगे।"* इसके बावजूद इसमें दो राय की गुंजाइश नहीं थी कि सत्याग्रही गांधी और संविधानमार्गी जिन्ना के रास्ते अब साफ़ अलग होते दिख रहे थे।

प्रथम विश्व-युद्ध की घटनाओं का हिन्दुस्तान के राजनीतिक परिदृश्य पर ख़ासा प्रभाव पड़ा। तुर्की के सुल्तान को मुसलमान-जगत के शीर्षस्थ धर्मगुरु ख़लीफ़ा का समादृत स्थान प्राप्त था। वह मुसलमानों के पवित्रतम तीर्थस्थल काबा के संरक्षक भी थे। सुल्तान को ख़लीफ़ा के रूप में मुस्लिम-जगत पृथ्वी पर ईश्वर की छाया मानता था। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान उनके नेतृत्व में तुर्की ने भी इंग्लैंड और उसके सहयोगी देशों के विरुद्ध जर्मनी का साथ दिया था। उस समय के तुर्की के सुल्तान और ख़लीफ़ा का नाम अब्दुल हमीद था। उनके साथ पूरे मुस्लिम विश्व की भावनाएँ अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ जुड़ी थीं। हिन्दुस्तान में मौलाना मुहम्मद अली द्वारा सम्पादित अंग्रेज़ी और उर्दू पत्र *'कामरेड'* तथा मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद' द्वारा सम्पादित *'मदीना'* में ख़लीफ़ा के पक्ष में बड़े तेजस्वी और भावनापूर्ण लेख और सम्पादकीय छप रहे थे। इसके कारण अली बन्धुओं—मौलाना शौकत अली व मौलाना मुहम्मद अली तथा मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद' को अंग्रेज़ सम्राट के शत्रुओं का पक्ष लेने के आरोप में गिरफ़्तार कर लिया गया था। युद्ध के दौरान हिन्दुस्तानी मुसलमानों का सहयोग इस आश्वासन के आधार पर प्राप्त किया गया था कि विजय के उपरान्त मुसलमानों की तुर्की के सुल्तान और ख़लीफ़ा के साथ जुड़ी भावनाओं को ध्यान में रखते हुए उनके साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार किया जाएगा। पर युद्ध में विजय के पश्चात् जिस तरह तुर्की पर अपमानजनक शर्तें थोपकर एक विजित देश के रूप में इसकी धरती की बन्दरबाट के साथ उसके शासक के सदियों पुराने सार्वभौम राजनीतिक और धार्मिक अधिकारों का परिसीमन किया गया था, उससे हिन्दुस्तान का मुसलमान-समाज बहुत गहरे आहत और उद्वेलित था। तुर्की के सुल्तान और ख़लीफ़ा का युद्धपूर्व गौरव पुनः स्थापित करने के लिए इंग्लैंड की सरकार पर दबाव डालने के लिए देश-भर में ख़िलाफ़त-समितियाँ गठित की गई थीं। इसके लिए व्यापक आन्दोलन की तैयारियाँ चल रहीं थीं। रौलट क़ानून और सरकार की दमनपूर्ण नीतियों के विरुद्ध कांग्रेस और होमरूल लीग के सदस्य और नेता भी आहत और ठगे से अनुभव कर रहे थे। *"स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे"* तिलक का यह मन्त्रवत उद्घोष लोगों में स्वतन्त्रता के लिए कुछ कर गुज़रने का संकल्प जागृत कर चुका था। पंजाब में नागरिक अधिकारों के शर्मनाक दमन और जलियाँवाला बाग़ के नृशंस हत्याकांड ने लोगों के दिलो-दिमाग़ को गहरे आक्रोश से भर दिया था। गांधी अपने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन की घोषणा कर चुके थे। अभी तक सामान्य मुस्लिम-समाज स्वतन्त्रता-संघर्ष की मुख्य धारा से कटा हुआ था। ख़िलाफ़त को लेकर जिस तरह वह आहत और उद्वेलित था, उसके आधार पर गांधी को ऐसा अनुभव हो रहा था कि उसे देश की राजनीति की

मुख्यधारा से जोड़ा जा सकता था। गांधी ने ख़िलाफ़त के प्रश्न पर जैसी सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की थी, उससे मुस्लिम लीग के सामन्ती और अंग्रेज़परस्त नेताओं को छोड़कर मुसलमान समाज का एक बड़ा वर्ग उनकी तरफ़ आशा-भरी निगाह से देख रहा था। उन्होंने अंग्रेज़ी शासन से असहयोग की अपनी योजना के साथ ही ख़िलाफ़त से जुड़े मुद्दों की भी सार्वजनिक व्याख्या शुरू कर दी थी। दक्षिण अफ़्रीका और चम्पारन के जनान्दोलन के इस नायक ने देश की जनता में सर्वथा एक नए जोश और हरारत का संचार कर दिया था।

पत्नी रत्ती और नवजात बेटी दीना के साथ नवम्बर, 1919 के मध्य जिन्ना जब हिन्दुस्तान लौटे तो उन्हें राजनीतिक परिदृश्य काफ़ी उत्तेजक और बदला-बदला लगा। जिन्ना केन्द्रीय असेम्बली से अपने इस्तीफ़े के रूप में रौलट ऐक्ट के ख़िलाफ़ अपना आक्रोश और विरोध प्रकट कर चुके थे। बम्बई पहुँचकर 'बॉम्बे क्रानिकल' को दिए गए अपने पहले इंटरव्यू में जिन्ना ने इस नाज़ुक घड़ी में देश को संयम और सन्तुलन बनाए रखने का परामर्श दिया था। चेम्सफ़ोर्ड के प्रशासन को हर दृष्टि से नाकामयाब बताते हुए उन्होंने एक बार विश्वास जताया था कि मॉन्टैग्यू हिन्दुस्तान को निराश नहीं करेंगे। उनके अनुसार देश में नवजागृति शिक्षा, वाणिज्यिक-औद्योगिक उन्नति, तकनीकी विकास और राष्ट्रीय सैन्य नीति द्वारा ही सम्भव थी। उन्होंने आगे जोड़ा था कि कांग्रेस का मॉन्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट के आधार पर तैयार विधेयक के प्रति सही दृष्टिकोण दिसम्बर में कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन के बाद ही साफ़ होगा। इंटरव्यू में जिन्ना ने एक बड़ी दिलचस्प बात कही थी। उनके अनुसार अगर हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि के रूप में आधे दर्जन समझदार व्यक्ति स्थायी रूप से इंग्लैंड में रहें और उन्हें यहाँ से पर्याप्त आर्थिक सहयोग और जनसमर्थन मिले तो देश के हित में वहाँ के महत्त्वपूर्ण तबके में जनमत बनाने में वे बड़ी सार्थक भूमिका निभा सकते हैं। जिन्ना के अवचेतन में लगता है, कहीं-न-कहीं आगे चलकर लन्दन में स्थायी रूप से स्वयं रहने की उनकी अपनी योजना भी काम कर रही थी।

23 दिसम्बर, 1919 को मॉन्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट की सिफ़ारिशों पर आधारित गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट ब्रिटेन की संसद ने पास कर दिया। इसके अनुसार केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली को दो सदनोंवाली लघु संसद का रूप प्रदान कर दिया गया था, जिसके निचले सदन में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया था। जिन्ना सहित कई हिन्दुस्तानी नेताओं की एक बड़ी पुरानी माँग उसमें मान ली गई थी। हिन्दुस्तानी मामलों के लन्दन स्थित मन्त्री तथा उनके कार्यालय का पूरा ख़र्च हिन्दुस्तान के बजट की जगह अब इंग्लैंड के संसदीय बजट के अन्तर्गत आवंटित कर दिया गया था। उच्च सरकारी सेवाओं के हिन्दुस्तानीकरण के लिए यहाँ एक लोक सेवा आयोग की स्थापना का प्रावधान भी किया गया था। ऐक्ट में एक ऐसे क़ानूनी जाँच आयोग का प्रावधान भी था, जो यहाँ की शिक्षा की उन्नति तथा प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास के साथ इस विशेष विषय पर भी रिपोर्ट देने के लिए अधिकृत था कि दस साल बाद किस हद तक

यहाँ प्रतिनिधि उत्तरदायी सरकार बहाल की जा सकती थी। गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट के बाक़ी प्रावधान कमोबेश मॉन्टैग्यू-चेम्सफ़ोर्ड की रिपोर्ट पर ही आधारित थे।

दिसम्बर, 1919 के अन्तिम तीन दिन अमृतसर में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में दिलचस्प बात यह हुई कि जहाँ गांधी गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट से पूरी तरह सन्तुष्ट न होते हुए भी उसे परीक्षण का मौक़ा देना चाहते थे, वहीं विपिनचन्द्र पाल, देशबन्धु चितरंजन दास, लोकमान्य तिलक और महामना मदन मोहन मालवीय पूर्णतः उसके विरुद्ध थे। गांधी के दृष्टिकोण से जिन्ना पूरी तरह सहमत थे। उन्होंने पहली बार गांधी के पहले महात्मा शब्द का प्रयोग करते हुए उनके (गांधी के) गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट को मान लेने के प्रस्ताव का ज़ोरदार समर्थन किया था। अन्ततः पंजाब में लाला हरकिशन लाल और बम्बई के जयरामदास के प्रयास से गांधी और जिन्ना के विचारों पर सर्वसम्मति बनी और सम्बन्धित प्रस्ताव निर्विरोध पास हो गया। पर ब्रिटिश-राज के सहयोग के प्रश्न पर अमृतसर में कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया था कि वह इस पर आश्रित होगा कि सरकार पंजाब और ख़िलाफ़त के मसले पर कैसा नजरिया अख़्तियार करती है।

ख़िलाफ़त के पक्ष में संघर्ष के लिए गठित ख़िलाफ़त कान्फ्रेन्स और मुस्लिम लीग ने भी कांग्रेस के साथ ही उसी समय अमृतसर में अपने अधिवेशन किए थे। उन अधिवेशनों में मौलाना मोहम्मद अली ने भी रिहाई के बाद एक हीरो के रूप में भाग लिया। ख़िलाफ़त के सवाल पर गहरी भावनात्मक अपील के कारण देश का मुसलमान वर्ग उस समय मुस्लिम लीग से कहीं अधिक ख़िलाफ़त-कान्फ्रेन्स से जुड़ा था। ख़िलाफ़त कान्फ्रेन्स मुस्लिम लीग से फ़िलहाल कहीं बड़ा संगठन था। कांग्रेस, लीग और ख़िलाफ़त कान्फ्रेन्स—तीनों ने अमृतसर में गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट, पंजाब और ख़िलाफ़त के प्रश्नों पर समान निर्णय लिये थे। जिन्ना ख़िलाफ़त कांग्रेस के सदस्य नहीं थे। उन्होंने ख़िलाफ़त के प्रश्न पर तुरन्त कोई प्रतिक्रिया भी व्यक्त नहीं की थी। उन्होंने ख़िलाफ़त-आन्दोलन के तहत अंग्रेज़ सरकार के पद, पदवी और इंग्लैंड के सामान के त्याग और बहिष्कार के आह्वान को अनदेखा कर दिया था। ज्ञातव्य है कि ख़िलाफ़त के प्रश्न पर गांधी ने चेम्सफ़ोर्ड को पत्र लिखकर ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त क़ैसरे-हिन्द स्वर्ण पदक, जल-युद्ध पदक तथा बोअर युद्ध पदक लौटा दिए थे। हक़ीम अजमल ख़ाँ ने भी विशिष्ट जनसेवा के लिए दिया गया क़ैसरे-हिन्द पदक लौटा दिया था। इनके बरअक्स जिन्ना ख़िलाफ़त-आन्दोलन को एक धार्मिक अभियान के रूप में देखते थे तथा कांग्रेस और लीग के आन्दोलनों को एक धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक आन्दोलन मानकर दोनों को मिलाना पसन्द नहीं करते थे। बहरहाल अमृतसर में ही उन्हें सन् 1920 में कलकत्ता में होनेवाले मुस्लिम लीग के अधिवेशन का अध्यक्ष चुन लिया गया था।

सन् 1920 के पूर्वार्द्ध में कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं, जिनसे देश के राजनीतिक वातावरण में एक अभूतपूर्व गर्मी का संचार हो गया। पंजाब की धटनाओं की जाँच के लिए कांग्रेस की जाँच समिति की रिपोर्ट 25 मार्च को प्रकाशित हो गई थी, जिसमें पंजाब में बर्बर अमानवीय अपकृत्यों के लिए जनरल डायर और सर माइकेल

डायर सहित कई अंग्रेज़ अधिकारियों को न्यायोचित दंड देने की माँग की गई थी। अंग्रेज़ सरकार द्वारा नियुक्त हंटर कमीशन की रिपोर्ट थोड़ी बाद में मई में प्रकाशित हुई। इस कमीशन में हिन्दुस्तानी सदस्य भी थे, पर अंग्रेज़ सदस्यों का उसमें बहुमत था। हंटर कमीशन के हिन्दुस्तानी सदस्यों का मत कांग्रेस की रिपोर्ट से मेल खाता था। पर उसके अंग्रेज़ सदस्यों ने घटना पर काफ़ी लीपा-पोती की थी। कमीशन के बहुमत की रिपोर्ट के अनुसार पंजाब में जनरल आर.ई. डायर और सर माइकेल ओ. डायर की कार्यवाही 'निर्णय की भूल' (एरर ऑफ़ जजमेंट) थी। इस पर तुर्रा यह था कि इंग्लैंड के हाउस ऑफ़ लार्ड्स के एक वरिष्ठ सदस्य लॉर्ड फिनले ने कुछ और सदस्यों के साथ जनरल डायर को 'पंजाब के रक्षक' (सेवियर ऑफ़ पंजाब) और 'समय के नायक' (हीरो ऑफ़ दि ऑवर) के रूप में रत्नजटित तलवार और एक बड़ी राशि की थैली भेंट कर एक विशेष समारोह में अभिनन्दित किया था। इसने हिन्दुस्तानियों के रोष की आग में घी का काम किया। 10 अगस्त, 1920 को इंग्लैंड और उसके साथी देशों तथा जर्मनी और उसके साथी देशों के अध्यक्षों (जिसमें तुर्की के सुल्तान भी शामिल थे) के बीच एक सन्धि प्रतिपादित हुई। इसे सेवरेस की सन्धि (ट्रीटी ऑफ़ सेवरेस) के नाम से जाना जाता है। इसके तहत तुर्की के सुल्तान के साथ जो घोर अपमानजनक सलूक किया गया था, उससे हिन्दुस्तान के मुस्लिम समाज की धार्मिक भावनाओं पर गहरी चोट लगी थी। इससे रही-सही कसर भी पूरी हो गई थी। समूचे देश के आत्म-सम्मान और उसके एक संवेदनशील समाज की धार्मिक अस्मिता को यह एक बड़ी चुनौती थी। जिन्ना के लिए अब इन सभी घटनाओं पर अपनी दोटूक प्रतिक्रिया व्यक्त करने का समय आ गया था। दिसम्बर, 1920 में कलकत्ता में एक बार फिर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन क्रमशः लाला लाजपतराय और जिन्ना की अध्यक्षता में एक साथ होने जा रहे थे। जिन्ना को इन दोनों दलों के मंचों से अपनी सुसंगत, निर्भीक राय व्यक्त करने का मौक़ा प्राप्त होने जा रहा था।

गांधी ने दक्षिण अफ़्रीका और आगे चलकर हिन्दुस्तान के चम्पारण में प्रयुक्त अपने सत्याग्रह के अहिंसक हथियार को प्रस्तावित असहयोग आन्दोलन के रूप में एक नया आयाम दे दिया था। रौलट ऐक्ट, पंजाब में हुए अत्याचार और ख़िलाफ़त पर हुए आघात से अपने असन्तोष और आक्रोश को एक सुनियोजित आन्दोलन में परिवर्तित करने के लिए उन्होंने अंग्रेज़ों की सभी संस्थाओं (न्यायालय, विद्यालय, कार्यालय, विधायिका और स्वशासी निकायों) के साथ विदेशी माल के पूर्ण बहिष्कार और अंग्रेज़ों द्वारा दिए गए सभी पदों, उपाधियों, पुरस्कारों, पदकों और सम्मानों को लौटाने के आह्वान को उसका प्रमुख अंग बताया। 5 से 9 सितम्बर तक तीन दिनों के कलकत्ता अधिवेशन के पहले अब्बास तैयबजी की अध्यक्षता में अहमदाबाद में आयोजित गुजरात राजनीतिक अधिवेशन (पोलिटिकल कॉन्फ्रेन्स) की सभा में गांधी ने अपने असहयोग आन्दोलन का और इसे ख़िलाफ़त-आन्दोलन के साथ-साथ चलाने के औचित्य का विस्तार के साथ खुलासा किया। वहाँ जो विशाल जन-समर्थन उन्हें प्राप्त हुआ था उससे जगे

आत्मविश्वास के साथ वह कलकत्ता पहुँचे थे। ख़िलाफ़त-सभा का पूर्ण समर्थन उन्हें पहले ही मिल चुका था।

कांग्रेस का सितम्बर अधिवेशन कलकत्ता में दरअसल गांधी के आन्दोलन की योजना पर विचार के लिए ही बुलाया गया था। कांग्रेस के वरिष्ठ दिग्गज नेता—श्रीमती एनी बेसेंट, चितरंजन दास, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय, पं. मदनमोहन मालवीय, पं. मोतीलाल नेहरू और मोहम्मद अली जिन्ना, गांधी की योजना के विरुद्ध थे। लोकमान्य तिलक का पहली अगस्त को देहान्त हो चुका था। यदि वह जीवित होते तो बहुत सम्भव था कि जिस रूप में गांधी आन्दोलन को चलाना चाहते थे, उससे वह भी असहमत ही होते। मोतीलाल नेहरू तो गांधी के प्रस्ताव के विरोध के लिए इतने दृढ़निश्चय लग रहे थे कि उन्होंने जिन्ना के हावड़ा स्टेशन पर पहुँचते ही उनसे मुलाक़ात कर गांधी के प्रस्ताव को पराजित करने की साझा रणनीति तैयार करने की पेशकश की थी। दूसरी तरफ़ कांग्रेस में जिन्ना के अलावा सभी मुसलमान नेताओं सहित उसके युवा नेता वल्लभभाई पटेल, राजगोपालाचारी, सरोजिनी नायडू, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस और नरेन्द्र देव पूरे जोश-खरोश के साथ गांधी के साथ थे। गांधी की योजना के विरोध में विपिनचन्द्र पाल ने जो प्रस्ताव रखा था, उसके समर्थन में सबसे तर्कसंगत किन्तु भावपूर्ण भाषण जिन्ना का ही था। जिन्ना को यह पता चल गया था कि वरिष्ठ दिग्गज नेताओं के विरोध के बावजूद अधिवेशन में गांधी और उनके समर्थकों का ही पलड़ा भारी था। अतः उन्होंने गांधी के आन्दोलन की योजना को अमली जामा पहनाने की कोशिश को फ़िलहाल टालने के लिए एक समिति गठित करने का सुझाव दिया। प्रस्तावित समिति को रिपोर्ट देनी थी कि शिक्षण संस्थाओं और न्यायालयों के बहिष्कार की स्थिति में वैकल्पिक व्यवस्था क्या होगी। पर गांधी की आँधी के सामने किसी की कुछ भी नहीं चली। प्रस्ताव पर मतदान की स्थिति में मोतीलाल नेहरू तक ने गांधी के समर्थन में राय दी। इस तरह गांधी के आन्दोलन की योजना पर विराट जनसमर्थन की मुहर लग गई। पर प्रस्ताव के विरोध में अन्त तक श्रीमती एनी बेसेंट, पं. मदनमोहन मालवीय और मुहम्मद अली जिन्ना अडिग ही रहे। जिन्ना का भाषण इतना तर्कसंगत और सुविचारित था कि अधिवेशन में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों का एक अच्छा-ख़ासा वर्ग उनका कायल हो गया था। उनके भाषण से भारी-भरकम मौलाना शौकत अली बौखला उठे थे। भाषण ख़त्म होते ही उन्होंने अत्यन्त अशोभनीय ढंग से आगे बढ़कर जिन्ना की गर्दन पकड़ ली थी। महत्त्वपूर्ण लोगों के बीच-बचाव के कारण आगे और अप्रिय घटना होते-होते बच गई थी।

कलकत्ता में मुस्लिम लीग के समान्तर अधिवेशन में जिन्ना का भाषण और भी भावपूर्ण पर तर्कसंगत था। रौलट क़ानून, उसके विरोध और विरोध के दमन की जो परिणति पंजाब की लोमहर्षक घटनाओं में हुई थी, उसे सरकार द्वारा आयोजित 'अपराध के ऐसे उत्सव' की संज्ञा उन्होंने दी थी 'जिसे धो पाने की क्षमता मर्दों के शब्दों और औरतों के आँसुओं में नहीं थी।' उन्होंने देश पर थोपी गई एक के बाद एक अनिष्टकारी

घटनाओं का उल्लेख करते हुए कहा :

"पहले रौलट क़ानून आया और साथ ले आया पंजाब के बर्बर अत्याचार और फिर आया ज़िन्दगी और मौत से जुड़ा तुर्की के साम्राज्य और ख़िलाफ़त की लूट-खसोट का मामला।

"हिन्दुस्तान के ख़ून और हिन्दुस्तान के सोने की माँग की गई—जो बदक़िस्मती से दिया भी गया—पर उसे लिया गया तुर्की को तोड़ने के लिए और रौलट क़ानून की जंजीरें गढ़ने के लिए।

श्री गांधी ने देश के सामने असहयोग का कार्यक्रम रखा है। अब इस पर आपको सोचना है कि क्या आप उसकी नीति से सहमत हैं या नहीं—यदि हाँ तो क्या उसके बारीक ब्यौरे भी आपको मंज़ूर हैं ? मैं अभी भी सरकार से कहना चाहता हूँ कि वह हिन्दुस्तान की जनता को घोर हताशा की ओर न ढकेले, जिससे कि जनता के सामने कोई और रास्ता न बचे सिवाय इसके कि वह असहयोग की नीति पर चलना चालू कर दे। भले ही यह ज़रूरी नहीं है कि वह श्री गांधी का ही कार्यक्रम हो। इस योजना पर अमल की चोट आपमें से हर एक को अलग-अलग व्यक्तिगत रूप से झेलनी होगी और इसलिए यह महज़ आप पर मुनहसर है कि आप अपनी ताक़त का अन्दाज़ा लगाएँ और किसी फ़ैसले के पहले इसके हर पहलू को अच्छी तरह तौल लें। पर एक बार अगर आपने इस मामले में आगे बढ़ने का फ़ैसला ले लिया तो किसी भी हालत में पीछे हटने का कोई सवाल पैदा नहीं होगा।"

मुस्लिम लीग के मंच से दिए गए उनके भाषण का एक और अंश दृष्टव्य है—

"एक अपमानजनक क़दम के बाद दूसरा अपमानजनक क़दम, एक निराशा के बाद दूसरी निराशा और एक चोट के बाद दूसरी चोट। यह सिर्फ़ एक नतीज़े की ओर ले जा सकती है। ऐसी स्थिति रूस को बोल्शेविक इंक़लाब की ओर ले गई और आयरलैंड को सिनफ़ेनवाद की ओर। हमारी कामना है कि ये हिन्दुस्तान को आज़ादी की ओर ले जाए।"

ज्ञातव्य है कि मुस्लिम लीग के जो सदस्य ख़िलाफ़त-सभा से जुड़े थे वह गांधी के कार्यक्रम को पहले ही अपना समर्थन दे चुके थे। बाक़ी सदस्यों में बहुमत सरकारपरस्त और सुविधाभोगी सामंतों और पश्चिमी सभ्यता में रँगे लोगों का था। जिन्ना स्वयं इन आन्दोलनों के ख़िलाफ़ अपनी राय कांग्रेस के मंच से दिए गए अपने भाषण में दे चुके थे। इन सबके बावजूद लीग एकदम से अलग-थलग नहीं पड़ना चाहती थी। इसलिए उसने भी असहयोग को दबे मन से अपने पास किए गए प्रस्ताव में समर्थन दे दिया।

गांधी और जिन्ना का पहला सीधा टकराव बम्बई में 3 अक्टूबर, 1920 को होमरूल लीग की बैठक में हुआ। अप्रैल में गांधी इसके अध्यक्ष चुन लिए गए थे। गांधी की राय मानकर इसका नाम स्वराज-सभा कर दिया गया था। जिन्ना इस संगठन से उसके जन्मकाल से ही शीर्षस्थ नेता के रूप में जुड़े थे। उन्होंने इस नाम-परिवर्तन पर कोई एतराज़ नहीं किया। पर जब गांधी ने उसका उद्देश्य ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत

संवैधानिक मार्ग से स्वशासन की प्राप्ति की जगह बदलकर हिन्दुस्तानी जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप हिन्दुस्तान के लिए स्वराज की प्राप्ति करने का प्रस्ताव रखा तो जिन्ना और उनके समर्थकों ने इसका विरोध किया। जिन्ना ने ज़ोर देकर कहा कि बैठक में शामिल सदस्य बिना सामान्य सभा (जनरल बॉडी) की सहमति के यह परिवर्तन करने में सक्षम नहीं थे। इस पर गांधी का दोटूक जवाब था कि जो लोग इस परिवर्तित उद्देश्य से सहमत नहीं थे, वह संगठन छोड़ने के लिए स्वतन्त्र हैं। प्रस्ताव 19 मतों के विरुद्ध 42 मतों से पारित हुआ। आहत जिन्ना और उनके समर्थकों ने, जिनमें उनके प्रबल प्रशंसक भ्रातृद्वय जमनादास द्वारकादास, कान्जी द्वारकादास और के.एम. मुंशी भी शामिल थे, संगठन से इस्तीफ़ा दे दिया। जिन्ना और उनके समर्थकों ने अपने इस्तीफ़े गांधी के रवैए को तानाशाही भरा बताते हुए दिए थे। गांधी को जब अपनी भूल का पता चला तो उन्होंने खेद व्यक्त करते हुए उन्हें इस्तीफ़े पर पुनर्विचार करने का आग्रह करते हुए लिखा कि इस्तीफ़ा वापस लेकर *"वह देश के सामने खुल रहे नए जीवन में अपना हिस्सा प्राप्त करें।"* अपने श्रम और विवेक से तिल-तिल निर्मित संगठन में परिस्थितिवश अल्पमत हो जाने के फलस्वरूप मिले बर्ताव के कारण वह गहरे आहत हुए थे। उन्होंने तल्ख़ भाषा में तुरन्त उत्तर दिया, *"अगर नए जीवन से आप का मतलब अपने काम करने के ढंग और कार्यक्रम से है तो मुझे डर है कि मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर पाऊँगा क्योंकि मैं पूरी-पूरी तरह मानता हूँ, कि वो देश को घोर अनर्थ की ओर ले जानेवाले हैं।"* आहत मन जिन्ना ने आगे लिखा था :

"आपके रवैए ने उन सभी संस्थाओं में, जिनसे आप अब तक जुड़े, दरार और विभाजन पैदा कर दिया। यह दरार और बँटवारा आपने न केवल हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बल्कि, हिन्दुओं-हिन्दुओं के बीच और मुसलमानों-मुसलमानों के बीच, यहाँ तक कि बाप और बेटे के रिश्तों के बीच तक पैदा कर दिया है। इस समय पूरे देश में लोग पागल हो रहे हैं। आपके अतिवादी कार्यक्रमों ने ज़्यादातर अनुभवहीन युवावर्ग और अनजान-अनपढ़ जनता की ही कल्पना को उत्तेजित किया है। यह देश को भयंकर अराजकता की ओर ले जाएगा। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं मानता हूँ कि सरकार की ग़लत नीतियाँ इसकी वजह हैं और जब तक ये वजहें ख़त्म नहीं होतीं तब तक उनका असर बरक़रार रहेगा। इन वजहों को दूर करने के लिए न तो मेरे पास कारगर आवाज़ है और न ही ताक़त। इसके बावजूद मैं यह क़तई नहीं चाहता हूँ कि मेरे देशवासी चूर-चूर हो बिखर जाने के लिए जोखिम के ख़तरनाक कगार तक घसीट लिए जाएँ।"

यह कहते हुए गांधी की अध्यक्षता में नवस्पन्दित होमरूल लीग से (जो अब अपने नए अवतार में स्वराज-सभा थी) जिन्ना ने सदा के लिए नाता तोड़ लिया। ज्ञातव्य है कि होमरूल लीग की संस्थापिका स्वयं श्रीमती एनी बेसेंट भी, गांधी के कार्यक्रम से गम्भीर रूप से असहमति दर्ज कराते हुए, जिन्ना से पहले ही उससे अलग हो गई थीं। जिन्ना के पत्र के उक्त उद्धरण में, जहाँ देश की दारुण स्थिति के प्रति उनके गहरे

सरोकार की ईमानदार प्रतिध्वनि मिलती है, वहीं यह साफ़ हो जाता है कि परम्परागत संविधानवादी रास्ते से स्वराज की कामना करनेवाले नेताओं में गांधी के विराट अहिंसक जन-आन्दोलन का मुहावरा अभी अबूझ बना हुआ था। ऐनी बेसेंट, मालवीय और जिन्ना जैसे सुधी नेताओं की प्रतिक्रियाएँ इसका प्रमाण हैं।

दिसम्बर, 1920 के अन्तिम तीन दिनों में एक बार फिर कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के नियमित अधिवेशन नागपुर में आयोजित हुए। कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष थे दक्षिण के वरिष्ठ नरमदलीय नेता विजय राघवाचारी। इसके पहले के अधिवेशनों में केन्द्रीयता अध्यक्ष की होती थी। यह पहला अधिवेशन था, जिसमें गांधी सभी के आकर्षण-बिन्दु थे। नागपुर में आयोजित दोनों अधिवेशनों में कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में लिए गए असहयोग-आन्दोलन के निर्णय की पुष्टि की जानी थी। वातावरण में उत्सव और तनाव दोनों था। कलकत्ता में असहयोग के प्रस्ताव से शुरू में असहमत चितरंजन दास ने स्वयं उसके पक्ष में प्रस्ताव रखा। श्रीमती एनी बेसेंट को इस सभा में अपना भाषण पूरा नहीं करने दिया गया था। प्रस्ताव के विरोध में जिन्ना का एकमात्र दृढ़ स्वर उभरकर आया था। गांधी और उनसे सहमत महानुभावों के प्रति अपना आदर प्रकट करने के साथ प्रस्तावित अहिंसक असहयोग के प्रति शंका जताते हुए उन्होंने कहा था कि *"लगता है बिना ख़ून बहे आज़ादी नहीं मिलेगी।"* जिन्ना को अपने भाषण के दौरान श्रोताओं की ओर से अत्यन्त अपमानजनक व्यवहार का सामना करना पड़ा। ख़िलाफ़त और असहयोग आन्दोलन के कलकत्ता और बाद में नागपुर अधिवेशन में अपनी असहमति व्यक्त करने के लिए उन्हें उत्तेजित श्रोताओं ने शर्म-शर्म के नारों के बीच बुज़दिल और राजनीतिक धोखेबाज तक कह डाला। जिन्ना के इस भाषण की चर्चा सभी जीवनीकारों, जिनमें हैक्टर बोलिथो और स्टैनली वॉलपर्ट भी शामिल हैं, ने की है। पर दुःख का विषय है कि इस पर चर्चा ज़्यादातर इस भाषण को बिना पढ़े की गई है। गांधी और मोहम्मद अली को क्रमशः 'महात्मा' और 'मौलाना' न कहकर दोनों के नाम के साथ 'मिस्टर' लगाने की उनकी ज़िद को लगभग सभी ने रेखांकित किया है। यह मात्र अंशतः ही सही है। जिन्ना ने अपने इस भाषण में गांधी के नाम की चर्चा ग्यारह बार की थी, जिसमें सात बार उन्होंने 'महात्मा' शब्द का प्रयोग किया था। गलती से चार बार उनके मुँह से महात्मा की जगह मिस्टर शब्द निकल गया था, जिस पर श्रोताओं के एतराज़ पर खेद व्यक्त करते हुए, वह इसे तुरन्त सुधार कर महात्मा शब्द का प्रयोग दोबारा करने से ज़रा भी हिचकिचाए नहीं थे। हाँ, मोहम्मद अली के नाम के साथ उन्होंने लगातार मौलाना की जगह मिस्टर शब्द का ही प्रयोग किया था। कांग्रेस के किसी भी अधिवेशन में शायद ही किसी नेता को वैचारिक असहमति और शब्द विशेष के प्रयोग के कारण इस तरह की अपमानजनक स्थिति से गुजरना पड़ा हो। सबसे खेद की बात यह है कि जब जिन्ना के साथ यह अशोभनीय व्यवहार किया जा रहा था, तो गांधी समेत किसी नेता ने हस्तक्षेप की ज़रूरत नहीं समझी थी।

जिन्ना के मन को चोट पहुँचानेवाली एक और घटना उल्लेखनीय है। उन्होंने अभी

अपना भाषण ख़त्म भी नहीं किया था कि ख़िलाफ़त-आन्दोलन के सूत्रधार मौलाना मोहम्मद अली मंच पर कूद-से पड़े। वह बोले, *"आप सवैधानिक रास्ते की बहुत बातें करते हैं। इससे मुझे एक कहानी याद आती है। एक नौजवान टोरी कार्लटन क्लब से निकलकर चहलक़दमी करते पिकैडिली सर्कस पहुँचा। वहाँ ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार से जुड़े साल्वेशन आर्मी नामक संगठन की सभा चल रही थी। उसमें वक्ता कह रहा था—'इस ओर आओ, यह परमेश्वर का रास्ता है।' यह सुनकर नौजवान टोरी ने टोकते हुए सवाल किया, "कब से आप ये उपदेश दे रहे हैं। 'बीस साल से' वक्ता ने कहा। 'अच्छा' तब टोरी नवयुवक बोला, 'अगर इतने साल बाद भी आप महज़ पिकैडली सर्कस तक ही पहुँच पाए तो मैं आपके विचार के बारे में कोई ऊँची राय नहीं रख सकता।' "*

इस चुटकुले में जिन्ना के सवैधानिक मार्ग में विश्वास के प्रति जो उपहास का भाव सन्निहित था, उससे उन्हें मार्मिक चोट पहुँची थी। उनके प्रशंसक दीवान चमनलाल ने लिखा है कि उसके बाद आहत-दृष्टि और भ्रान्त-मुख उदास जिन्ना निश्चेष्ट बैठ गए थे।

उन पर गहरी ख़ामोशी छा गई थी। नागपुर के कांग्रेस-अधिवेशन में अपमान का कड़वा घूँट पीने के बाद जिन्ना ने होमरूल लीग की तरह अब कांग्रेस को भी अलविदा कहने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। सत्र के अन्त में इस दौर के वरिष्ठ पत्रकार दुर्गादास जब उनसे मिले थे, तो उनकी बातों में उन्हें क्रोध से कहीं अधिक गहरे दुःख का आभास मिला था। उन्होंने कहा था कि *"गांधी के नेतृत्ववाली कांग्रेस और उनके रास्ते अब अलग-अलग हैं।"* जनता की भावनाओं को भड़काने के रवैए की निन्दा करते हुए उन्होंने कहा था कि *"राजनीति शरीफ़ों का खेल है।"* दुर्गादास की बहुचर्चित पुस्तक 'भारत—कर्ज़न से नेहरू तक' से एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आता है, जो जिन्ना की तब तक की गहरी धर्म-निरपेक्ष राजनीतिक दृष्टि का परिचायक है। जिन्ना ने दुर्गादास को विश्वास में लेते हुए कहा था कि ख़िलाफ़त-आन्दोलन को तरज़ीह देने के कारण प्रतिक्रियावादी मुल्ला ऊपर आ गए थे। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा था कि *"हिन्दू नेता इस बात को क्यों नहीं समझते कि ख़िलाफ़त-आन्दोलन से अखिल इस्लामवाद (पैन इस्लामिज्म) को भारी प्रोत्साहन मिल रहा है। उसकी ओट में तुर्की का सुल्तान खलीफ़ा की खोल के नीचे अपने लगातार छीजते-टूटते साम्राज्य को मजबूत बनाने की भरपूर कोशिशें कर रहा है। इससे हिन्दुस्तान के मुसलमानों की राष्ट्रीयता कमज़ोर पड़ रही है।"* इस तरह ख़िलाफ़त के नाम पर उत्तेजक धार्मिक नारों से जनता में पागलपन पैदा करने के प्रयासों से भी अपनी गहरी असहमति व्यक्त करते हुए जिन्ना ने होमरूल लीग की तरह कांग्रेस से भी अपना रिश्ता तोड़ लिया था। दूसरे दिन मुस्लिम लीग के समान्तर अधिवेशन में भाग लिए बिना पहली उपलब्ध ट्रेन से विषण्णमन, उदास-हताश जिन्ना रत्ती के साथ बम्बई लौट आए थे।

4

चौरी-चौरा कांड से गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट 1935 के अन्तर्गत सन् 1937 के चुनाव तक

सन् 1922 से सन् 1937 तक

होमरूल लीग और कांग्रेस, दोनों से नाता तोड़ने के बाद जिन्ना ने अपने वकालत के पेशे की व्यस्तताओं में डूब जाना चाहा था। पर जिन राजनीतिक प्रतिबद्धताओं और मूल्यों में उनकी गहरी आस्था थी, उसने उन्हें चैन नहीं लेने दिया। अपने आदर्श गोपाल कृष्ण गोखले की पुण्यतिथि पर उनके ही द्वारा स्थापित 'सर्वेंट्स ऑफ़ इंडिया सोसाइटी' के तत्त्वावधान में 19 फ़रवरी, 1921 को जिन्ना ने देश की राजनीतिक स्थिति का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया। जहाँ उन्होंने देश के स्वाभिमान को गम्भीर रूप से आघात पहुँचाने के लिए अंग्रेज़ शासकों की कड़ी भर्त्सना की, वहीं उन्होंने गांधी के असहयोग और ख़िलाफ़त-आन्दोलनों द्वारा उत्पन्न टकराव की राजनीति के ख़तरों से आगाह करते हुए एक बार फिर उससे अपनी गहरी असहमति व्यक्त की। गांधी को एक महान नेता मानते हुए उन्होंने उनके कार्यक्रम को आध्यात्मिक आन्दोलन बताया, जो उनके अनुसार राजनीतिक दृष्टि से व्यावहारिक नहीं था। जिन्ना का मानना था कि यदि गोखले जीवित होते तो वह इस प्रकार के कार्यक्रम को कभी भी समर्थन न देते। एक वैकल्पिक मार्ग ढूँढ़ने के लिए जिन्ना ने जनवरी, 1922 में बम्बई में ही तीन सौ नेताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें गांधी भी शामिल हुए। उसमें आन्दोलनकारियों और अंग्रेज़ सरकार के मतभेदों पर विचार-विमर्श के लिए एक गोलमेज़ कांफ्रेंस बुलाने के प्रस्ताव पर सहमति हुई। फ़रवरी, 1922 में चौरीचौरा की हिंसा और हत्याओं से उद्विग्न गांधी ने जब आन्दोलन वापस ले लिया, तो देश में आक्रोश और असन्तोष का ज्वार फूट पड़ा। गांधी के लिए यह सबसे बड़ी परीक्षा की घड़ी थी।

पर जिन्ना ने अभी भी हार नहीं मानी थी। वह एक मध्यममार्गी राजनीतिक संगठन बनाने के लिए एक बार फिर सक्रिय हुए, जिससे वह गांधी और उनके 'अतिवादी' साथियों को अलग रखना चाहते थे। गांधी की अध्यात्म-प्रेरित राजनीति के प्रति उनका विकर्षण-भाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। इस प्रयास में जहाँ एक ओर उन्हें कांग्रेस और होमरूल लीग के अपने पूर्व प्रशंसकों और सहयोगियों की नकारात्मक उदासीनता

का सामना करना पड़ा, वहीं दूसरी ओर ख़िलाफ़त-आन्दोलन के कर्णधार नेताओं—शौकत अली, मोहम्मद अली तथा मौलाना आज़ाद जैसी दिग्गज मुसलमान हस्तियों की नफ़रत का भी उन्हें शिकार होना पड़ा। एक मध्यममार्गी धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक संगठन के ज़रिए देश की राजनीति में केन्द्रीय भूमिका निभाने का एक बार फिर से कुनमुनाया उनका सपना अन्तिम रूप से मौत की नींद सो गया।

सितम्बर, 1923 में केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली के चुनाव में भाग लेने के सवाल पर कांग्रेस में दो दल हो गए। मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास के नेतृत्व में स्वराज पार्टी के नाम से गठित दल चुनाव में हिस्सा लेने के लिए कृतसंकल्प था। दूसरा दल गांधी की असहयोग नीति में निष्ठा रखनेवाले लोगों का था, जो संवैधानिक रास्ते के ज़रिए स्वतन्त्रता-प्राप्ति की संभावना में क़तई आस्था नहीं रखता था। इस चुनाव में स्वतन्त्र मुस्लिम उम्मीदवार के रूप में मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र से जिन्ना निर्विरोध चुने गए। यह एक ऐसा प्रस्थान बिन्दु था, जब जिन्ना को पहली बार अपनी मुस्लिम पहचान का अहसास हुआ। पर अभी भी जिन्ना हिन्दुस्तान के मुसलमानों को पहले हिन्दुस्तानी और उसके बाद मुसलमान मानने की सीख देने से नहीं चूकते थे। कांग्रेस से मुस्लिम लीग में आए राजा महमूदाबाद ने जिन्ना से सम्बन्धित अपने किशोरावस्था के संस्मरण में इसका मर्मस्पर्शी ज़िक्र किया है।

व्यापक राष्ट्रीय हित जिन्ना के मन में अब भी सर्वोपरि था। सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली, दिल्ली के जनवरी, 1924 में वॉयसराय द्वारा उद्घाटन के तुरन्त बाद जिन्ना ने सभी तेईस स्वतन्त्र सदस्यों को संगठित करते हुए स्वराज पार्टी के वरिष्ठ नेता मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास के साथ विचार-विमर्श द्वारा उस दल के बयालीस सदस्यों को भी एकजुट कर एक अभूतपूर्व राष्ट्रीय दृष्टि का परिचय दिया। इस प्रकार जिन्ना की पहल पर पैंसठ निर्वाचित सदस्यों का एक राष्ट्रीय दल असेम्बली में गठित हो सका, जो हर मायने में सरकार द्वारा मनोनीत सदन के छत्तीस सदस्यों पर भारी सिद्ध होने में पूर्णतः सक्षम था। इस दल के प्रस्ताव के सामने विवश होकर लॉर्ड रीडिंग को सर अलेक्जेंडर मुडीमैन की अध्यक्षता में एक सुधार जाँच समिति (रिफार्मूस इंक्वायरी कमेटी) का गठन करना पड़ा। सर तेज बहादुर सप्रू, सर मोहम्मद शफी, सर वी.एस. शिव स्वामी अय्यर और डॉ. आर.पी. परांजपे के साथ जिन्ना भी इस समिति के सदस्य बने। जिन्ना ने इस समिति के विचारार्थ एक विस्तृत तथा तर्क-संगत राष्ट्रीय माँगपत्र तैयार किया था। दुर्भाग्यवश वॉयसराय ने अपने विशेषाधिकार का उपयोग कर इस माँगपत्र पर सदन में विचार नहीं होने दिया। जिन्ना का महत्त्व दिल्ली की असेम्बली में वही था, जो कलकत्ता की असेम्बली में उनके आदर्श पुरुष और गुरु-तुल्य गोखले का हुआ करता था।

मई, 1924 में लाहौर में आयोजित मुस्लिम लीग के विशेष अधिवेशन में जिन्ना ने असहयोग और ख़िलाफ़त-आन्दोलन की सीमाओं को रेखांकित करते हुए यह ईमानदारी से स्वीकार किया कि इन आन्दोलनों ने देश में आज़ादी की ललक को निश्चय

ही तेज़तर कर दिया था। अपने भाषण में उन्होंने साफ़ ऐलान किया कि स्वराज हिन्दू-मुस्लिम एकता का ही दूसरा नाम है। उनके नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने पहली बार स्वराज-प्राप्ति के लिए संघर्ष का संकल्प लिया। लाहौर की इस घोषणा में शायद आख़िरी बार जिन्ना ने गांधी के पहले महात्मा विशेषण का प्रयोग किया था। असहयोग और ख़िलाफ़त-आन्दोलन से देश के सभी वर्गों में जो जोश पैदा हुआ था उसके नकारात्मक नतीजे को लेकर जिन्ना की आशंका एकदम निर्मूल नहीं थी। 1924 के अक्तूबर में तुर्की के नवोदित एवं तेजस्वी राष्ट्राध्यक्ष मुस्तफ़ा कमाल अतातुर्क ने जब ख़लीफ़ा का सदियों से चला आ रहा धार्मिक पद समाप्त कर दिया तो ख़िलाफ़त-आन्दोलन की हवा निकल गई। दोनों आन्दोलनों से उपजा जोश, हताशा और कुंठा से ग्रस्त हो अभूतपूर्व साम्प्रदायिक वैमनस्य और हिंसा का ज्वार बन पूरे देश में फूट पड़ा। इसमें सबसे ज्वलन्त था मालाबार के हिन्दू ज़मींदारों के ख़िलाफ़ मोपला मुसलमान खेतिहर मज़दूरों का हिंसक विद्रोह जिसके और भी कई आयाम थे।

व्यापक राष्ट्रीय दृष्टि से दीप्त जिन्ना के तेजस्वी व्यक्तित्व की झलक एक बार फिर 1927-28 में साइमन कमीशन के भारतव्यापी बहिष्कार के दौरान मिलती है। तत्कालीन भारतमन्त्री लॉर्ड बर्केन्हेड को भारत में दिन-ब-दिन स्वराज की माँग को लेकर बढ़ती उत्तेजना को ध्यान में रखकर संवैधानिक सुधार के ज़रिए देश के शासन में भारतीयों की भागीदारी पर सुझाव देने के लिए इग्लैंड के प्रसिद्ध क़ानूनविद् सर जान साइमन की अध्यक्षता में छः सदस्यों की एक समिति—रॉयल स्टेचुटरी कमीशन के नाम से गठित करनी पड़ी। भारतीय मन की अपेक्षाकृत बेहतर समझ रखनेवाले तत्कालीन वॉयसराय लॉर्ड इर्विन का सुझाव था कि कम-से-कम दो विशिष्ट भारतीय क़ानूनविदों को भी इस कमीशन का सदस्य मनोनीत किया जाए। केन्द्रीय असेम्बली में जिन्ना का जो महत्त्व सर्वमान्य था उसके आधार पर जिन्ना उक्त समिति में भारत के प्रतिनिधित्व के लिए सर्वश्रेष्ठ पात्र सिद्ध होते थे। पर लॉर्ड इर्विन के सुझाव को अनदेखा कर सभी अंग्रेज़ सदस्यों की इस समिति के भारत के दौरे के प्रस्ताव ने पूरे देश में आग लगा दी। साइमन कमीशन के बहिष्कार के मुद्दे पर जहाँ कांग्रेस एकमत थी मुस्लिम लीग में पूरी सहमति नहीं बन पाई थी। पंजाब के सर मोहम्मद शफी के नेतृत्व में मुस्लिम नेताओं का एक वर्ग कमीशन के साथ सहकार और उसके स्वागत के लिए अंग्रेज़ सरकार से वचनबद्ध था। पर जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग के अधिकांश सदस्य बहिष्कार के पक्ष में थे।

लाहौर में इस कमीशन के विशाल जुलूस का नेतृत्व करते हुए लाला लाजपत राय शहीद हो गए। लखनऊ में बहिष्कार समर्थक जुलूस का नेतृत्व करते हुए जवाहरलाल नेहरू पर पुलिस ने इस तरह घातक प्रहार किए थे कि उनका हश्र भी लाला लाजपत राय का सा ही होता, ईमानदारी से यदि गोविन्द बल्लभ पन्त ने बेहोश नेहरू के ऊपर गिरकर बाक़ी आघात स्वयं न झेल लिए होते। पहली जनवरी, 1928 को कमीशन के बहिष्कार के सिलसिले में कलकत्ता में आयोजित मुस्लिम लीग के आयोजन में विशिष्ट अतिथि के रूप में एनी बेसेंट और सरोजिनी नायडू भी शामिल हुई थीं। जिन्ना ने इस